लेखक की प्रमुख रचनायें

स्याद्वाद मंजरी (संस्कृत-अनुवाद)
जम्बूस्वामी चरित (संस्कृत, संपादित)
श्रीमद् राजचन्द्र (गुजराती-अनुवाद)
योगसार (अपभ्रंश-अनुवाद)
महावीर वर्धमान
दो हजार बरस पुरानी कहानियाँ
प्राचीन भारत की कहानियाँ
संप्रदायवाद
भारत के प्राचीन जैन तीर्थ
भारतीय तत्त्वचिंतन
लाइफ इन ऐंशियेन्ट इंडिया ऐज़ डिपिक्टेड
इन जैन कैनन्स (अंग्रेजी)
भारतीय कहानियाँ
चीनी जनता के बीच
अमिड्ट्स द चाइनीज़ पीपल (अंग्रेजी)
विवाह का बन्धन (मराठी-अनुवाद)
ताओ ते-चिंग (अंग्रेजी-अनुवाद)
देखा परखा
प्राकृत साहित्य का इतिहास
प्राकृत पुष्करिणी
मर्डर ऑफ महात्मा गांधी-एपिलॉग एण्ड
आफ्टर मैथ (अंग्रेजी)
लिच्छवियों के अंचल में

रूपांतरकार : डॉ० जगदीशचन्द्र जैन

एम० ए०, पी० एच० डी०

रमणी के रूप

प्रतिमा प्रकाशन

डॉ० विलियम मॉरिस

को

समर्पित
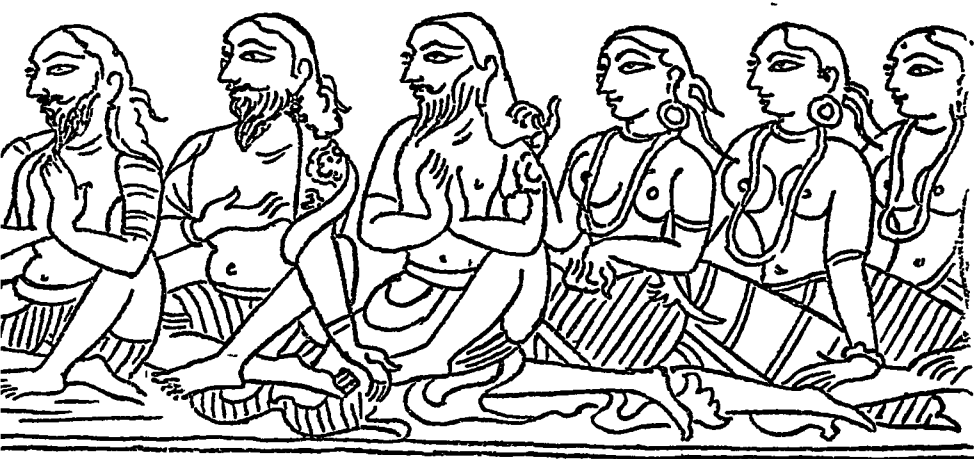
भूमिका

उस दिन फिल्म सेंसर बोर्ड की मीटिंग के बाद, डॉक्टर डब्ल्यू मौरिस से, जो हिन्दुस्तान आये थे, भारतीय फिल्मो के बारे में बातचीत होते-होते हिन्दुस्तान की संस्कृति के ऊपर बहस छिड़ गई। वे कहने लगे, "क्या हिन्दुस्तान में 'टू सून टू लव', 'गो नेकेड इन द वर्ल्ड', 'पोरट्रेट इन ब्लैक', 'सबटैरेनिअन्स', और 'डिजायर अण्डर द एल्म्स' जैसी सुन्दर और कलात्मक फिल्में बन सकती है? यहाँ के सारे धर्म और दर्शन मे अध्यात्म और आदर्शवाद की इतनी प्रधानता रही है कि पहले तो कोई यथार्थवादी सशक्त कथानक ही मुश्किल से खड़ा होता है, फिर अंग्रेजी फिल्मो की भाँति स्वाभाविक उत्कट प्रेम का चित्रण तो और भी टेढी खीर है।" मैंने कहा, "डाक्टर साहब! भारत की सभ्यता और संस्कृति इतनी अध्यात्मप्रधान और आदर्शवादी नहीं थी जितनी कि कुछ लोग समझते हैं। आप शायद न जानते हों कि भारतीय आर्य अपने जीवन की सौ आनन्दमयी शरद् ऋतुओं का सुख प्राप्त कर मरना चाहते थे, मोक्ष पाने की जल्दी उन्हे नहीं थी। उनका सारा जीवन

संघर्ष और युद्ध में बीता था जिससे इस भूमि पर वे अपने पैर जमा सके थे।"

डॉक्टर मौरिस बोले, "यह तो आप प्राचीन काल की बात कर रहे हैं। बौद्ध और जैन काल तथा मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति पर दृष्टि डालिये। इस काल के साहित्य में पौराणिक आख्यानों अथवा साधु-संतों के भक्ति काव्यों के सिवाय और क्या है ? जैन और बौद्ध धर्मानुयायी क्षत्रिय राजाओं के जीवन-त्याग, वैराग्य और निर्वाण-प्राप्ति की लगन से ओतप्रोत हैं। निर्वेद और शांत-रस की प्रधानता ही जहाँ-तहाँ देखने में आती है। जहाँ स्त्री मात्र को माँ बहन समझ उस पर नजर पड़ते ही नीचे की ओर मुँह कर लेने का उपदेश हो वहाँ श्रृंगार और प्रेम का क्या स्थान हो सकता है, आप ही बताइये ?" मैंने कहा, "डॉक्टर साहब ! जहाँ भारतीय संस्कृति और साहित्य में आप परलोकप्रधान निवृत्ति की ओर ले जानेवाली चिंतनधारा का दर्शन करते हैं, वहाँ इहलौकिक प्रवृत्तियों की ओर मोड़नेवाली यथार्थवादी धारा की भी कमी नहीं है। आज से लगभग २३०० वर्ष पहले केवल अर्थ को प्रधान बताते हुए कौटिल्य ने अर्थशास्त्र की रचना की, भरत ने नाट्यशास्त्र में नृत्य और अभिनय कला का विवेचन किया और वात्स्यायन ने कामसूत्र में कामकला का सांगोपांग प्रतिपादन किया। क्या यह सब भारत के मनीषियों की यथार्थवादी भौतिक मनोवृत्ति का परिचायक नहीं ? कृष्ण-काव्य इसी चिंतनधारा का परिणाम था जिसने जयदेव और विद्यापति के कृष्णभक्ति-सम्बन्धी श्रृंगारिक काव्यों को जन्म दिया। ईसवी सन् की १७वीं-१८वीं शताब्दी में लिखा जानेवाला नायिकाओं के नख-शिख वर्णन-प्रधान हिन्दी का रीतिकाल भी इसी परम्परा का द्योतक है।"

डॉक्टर मौरिस कहने लगे, "यह सब ठीक है, लेकिन इस प्रकार के साहित्य पर त्याग और वैराग्यप्रधान साहित्य का इतना अधिक प्रभाव

रहा कि भारत की जनता की प्रगति रुक गई। प्रेमपरक यौन सम्बन्धी कथा-साहित्य का भारत में अभाव ही रहा।" मैंने कहा, "देखिये, यह ठीक है कि पाश्चात्य देशों की भाँति इस देश में भौतिकवादी चिन्तन धारा को अधिक महत्व नहीं दिया गया, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि भारतवासी दुनियादारी से सर्वथा दूर रहे। प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन का नाम आपने सुना होगा। वह एक विद्वान् कवि था जिसने अपनी गाथासप्तशती में शृंगार और प्रेम का मार्मिक चित्रण करनेवाली ७०० सर्वश्रेष्ठ प्राकृत की गाथाओं का संग्रह किया है। इस राजा को संगीत, नृत्य आदि कलाओं से इतना प्रेम था कि उसने अपने नगर की प्रसिद्ध नर्तकियों के नाम पर मार्गों के नाम रखे थे। गाथासप्तशती की यही यथार्थवादी परम्परा जैन आचार्यों द्वारा लिखे हुए प्राकृत साहित्य के प्रेमाख्यानों में स्पष्टतया प्रतिबिंबित होती है। इस साहित्य की विशेषता है नारीचरित के विविध रूप और उसमें भी खासकर वेश्याओं, गणिकाओं, कुट्टिनियों और धूर्तों के सुन्दर और सरस आख्यान। उत्तरकालीन संस्कृत साहित्य में भी इस प्रकार के प्रेमाख्यान लिखे गये। आठवीं शताब्दी के काश्मीरी पंडित दामोदर गुप्त ने कुट्टिनीमत नाम का एक सरस ग्रन्थ लिखा है जिसमें लेखक का दावा है कि इसका अध्ययन करनेवाला विट, वेश्याओं, धूर्तों और कुट्टिनियों से नहीं ठगा जा सकता। ग्यारहवीं शताब्दी में क्षेमेन्द्र के कलाविलास और समयमातृका तथा भोजदेव ने शृंगारमंजरी की रचना की। क्षेमेन्द्र के बृहत्कथामंजरी और सोमदेव के कथा सरित्सागर में भी स्त्रियों के चरितसंबंधी अनेक प्रेमाख्यानों का वर्णन है। साहित्य में ही नहीं, डॉक्टर मौरिस! आप भारतीय शिल्पकला की ओर नजर डालिये। उड़ीसा के जगन्नाथपुरी और कोणार्क के मन्दिरों में तथा बनारस के नैपाली मन्दिर और खजुराहो आदि की शिल्पकला में हमें जो स्त्री-पुरुषों के कामुकतापूर्ण चित्र दिखाई देते हैं, उनमें कौन-सा अध्यात्म है? दक्षिण

के मन्दिरो मे देवदासी की प्रथा भी इस बात का सबूत है कि भक्ति के नाम पर भारतवासियों ने शृंगार को ही बढ़ावा दिया था।"

हमारी बहस बहुत देर तक चलती रही। मैंने कुछ दिन पहले जो प्राकृत और संस्कृत के प्रेमाख्यानों का संग्रह किया था, उसका रात-दिन लगातार बैठकर अंग्रेजी अनुवाद कर डाला और डॉक्टर मौरिस के यूरोप लौटने से पहले ही उन्हे भेंट कर दिया। इस बात का जब मेरे मित्रों को पता लगा तो उनका आग्रह हुआ कि इन आख्यानो से उन्हे क्यों वंचित रखा जाये, क्योंकि हिन्दुस्तान में भी ऐसे लोगो की कमी नहीं जो भारतीय संस्कृति को अध्यात्मप्रधान ही मानते है। उनके अनुरोध पर इस संग्रह का यह हिन्दी संस्करण पाठको के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस संग्रह की २६ कहानियो मे से २१ प्राकृत की और ५ संस्कृत की हैं*, जो ईसवी सन् पॉचवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक की लिखी हुई हैं।

---

* इन कहानियो का आधार है—

१. नर्मदासुन्दरी—नम्मयासुन्दरी कहा, महेश्वरसूरि, १२वीं शताब्दी

२-४. २. शीलवती की चतुराई, ३. रूपवती तारा, ४. नगरी के न्यायी पुरुष—कुमारवालपडिबोह, सोमप्रभसूरि, १२वीं शताब्दी

५. पक्षी का जोड़ा—यशस्तिलकचंपू (संस्कृत), सोमदेवसूरि, १२ वीं शताब्दी

५. राजाविक्रम और सुंदरी—पाइयकहासंग्रह, पउमचन्दसूरि के अज्ञात-नामा शिष्य १२-१३वीं शताब्दी।

७. कुमुदिका के हृदय की थाह—कथासरित्सागर (संस्कृत), सोमदेव, १२वीं शताब्दी

८. देवदत्ता और मूलदेव—उत्तराध्ययन वृत्ति, नेमिचन्द्र, ११वीं शताब्दी

इन कहानियों को तीन भागों में विभक्त किया गया है। पहले भाग में सती और शीलवंती नारियों के आत्मविश्वास की परिचायक साहसपूर्ण कहानियाँ हैं जिन्होंने अपनी चतुराई और सूझ-बूझ से अपने शील की रक्षा की। भारत की इन रमणियों का अटल विश्वास था कि चाहे अग्नि शीतल हो जाय, सूर्य पश्चिम में उगने लगे, पृथ्वी कंपायमान हो जाय, वायु ठहर जाय और समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर दे, फिर भी सतवंती नारियों का शील भंग नहीं हो सकता।

दूसरे भाग में गणिकाओं और कुट्टिनियों के कला-कौशल, कपटजाल और चतुराई की शिक्षाप्रद कहानियाँ हैं जिनसे तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। कोयला, दांत और लाख आदि के

---

९. कामलता का मरण-कपट—कुमारवालपडिबोह, सोमप्रभसूरि, १२वीं शताब्दी

१०. पुरुषों का प्रेम—शृंगारमंजरी (संस्कृत) भोजदेव, ११वीं शताब्दी

११. वसंततिलका और धम्मिल्ल—वसुदेवहिण्डी, संघदासगणि, ५वीं शताब्दी

१२. देवदत्ता का कला-कौशल—कहाणय कोस, जिनेश्वरसूरि, ११वीं शताब्दी

१३. यमजिह्वा का बन्दर—कथासरित्सागर (संस्कृत), सोमदेव, १२वीं शताब्दी

१४. सिंहलद्वीप की रानी रत्नवती—रयणसेहरीकहा, जिनहर्षगणि, १५वीं शताब्दी

१५. दो बहुमूल्य उपदेश—पाइयकहासंग्रह, पउमचन्दसूरि के अज्ञात-नामा शिष्य, १२-१३वीं शताब्दी

१६. जो खोजै सो पावे—धर्मोपदेशमालाविवरण, जयसिंहसूरि, ९वीं शताब्दी

व्यापार की भाँति प्राचीन काल मे असतीपोषण (वेश्यावृत्ति) भी मुख्य व्यापारों मे गिना जाता था। एक जगह उल्लेख है कि यदि किसी को शीघ्र ही धनी बनना हो तो ईख की खेती करनी चाहिये, समुद्र यात्रा करनी चाहिये, राजा की कृपादृष्टि प्राप्त करनी चाहिये और योनि-पोषण (वेश्यावृत्ति) का आश्रय ग्रहण करना चाहिये।

प्रश्न होता है कि वेश्यावृत्ति की क्या जरूरत है? इसका मुख्य कारण है बेकारी और गुजरलायक कम से कम वेतन का न मिलना। सभ्य कहे जानेवाले हमारे अर्थप्रधान पूँजीवादी समाज मे रुपये-पैसे का महत्व बढ़ जाने से जीवन मे कृत्रिमता का अंश अधिक आ गया है।

---

१७. पराई लक्ष्मी का उपभोग—कहाणयकोस, जिनेश्वरसूरि, ११वीं शताब्दी
१८. धूर्तराज मूलदेव—उपदेशपदटीका, वादिदेवसूरि, १२वीं शताब्दी
१९. शंब का साहस—बृहत्कल्पभाष्यवृत्ति, मलयगिरि, १२वीं शताब्दी
२०. विश्वासपात्र कौन?—भवभावना, मलधारि हेमचन्द्र, १२वीं शताब्दी
२१. नूपुरपंडिता की परीक्षा—धर्मोपदेशमालाविवरण, जयसिंहसूरि, ९वीं शताब्दी
२२. नागिनी का कपट जाल—कुमारवालपडिबोह, सोमप्रभसूरि, १२वीं शताब्दी
२३. तिरियाचरित—धर्मोपदेशमालाविवरण, जयसिंहसूरि, ९वीं शताब्दी
२४. रानी रत्नदेवी—हितोपदेश (संस्कृत), नारायण भट्ट, ९वीं शताब्दी
२५-२६. २५ युवती-चरित की शिक्षा, २६ सुकुमालिका का पतिव्रत—धर्मोपदेशमाला-विवरण, जयसिंहसूरि, ९वीं शताब्दी

इसका परिणाम यह हुआ है कि हम अपने ऐश-आराम के लिये कम से कम मेहनत करके अधिक से अधिक धन कमाना चाहते हैं। योरप, अमरीका और एशिया के नगरों में (सोवियत संघ और चीन को छोड़-कर) वेश्यावृत्ति बढ़ने का यही कारण है कि स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार और स्वतंत्रता की भावना जागृत होने से उनके रहन-सहन का सारा रंग-ढंग ही बदल गया है, और अपनी वेशभूषा आदि के आकर्षण से वे अपने आपको अधिक सुन्दर और कुशल दिखाने के लिये प्रयत्नशील रहती हैं।

आजकल की भाँति पहले जमाने में भी सेठ-साहूकार और व्यापारी अपनी धन-दौलत के बल से युवतियों को फँसाकर अपनी कामवासना शान्त करते थे। यद्यपि मैरो ने वधू और वेश्या मे केवल मूल्य और ठेके की अवधि का अन्तर बताते हुए विवाह को एक विशिष्ट फैशन का प्रकार माना है, फिर भी वधू चाहे अनुकूल हो या नहीं उसके साथ पुरुष को जीवन भर रहना पड़ता है, जब कि वेश्या से क्षणिक समागम के बाद छुट्टी मिल सकती है। इसके अतिरिक्त, वेश्यायें सुरतकला में निपुण होती हैं तथा रागपूर्ण हाव-भावों का प्रदर्शन कर, अपने आकर्षक वार्तालाप और वेशभूषा द्वारा वे काम को उत्तेजित करने में समर्थ होती हैं। चतु-र्भाणी में वेश्या को महापथ और कुलवधू को कुमार्ग बताते हुए कहा है कि कुलवधू सुरत में निपट अन्धी बन जाती है, वह दीनमुख रहती है, मुँह की बात मुँह में ही रखती है, उसे देखकर हँसमुख आदमी भी रोनी सूरत बना लेता है, लज्जा के घूँघट से वह ढँकी रहती है, भोलेपन के कारण अपनी जंघा तक के दर्शन नहीं करती—ऐसी हालत में उसे रस्सी से बँधा हुआ पशु ही समझना चाहिये।

अपनी कलहकारिणी स्त्रियों से डर कर भी लोग वेश्याओं के यहाँ जाने लगते थे। १२वीं शताब्दी के महाकवि शंखधर ने अपने लटक-मेलक नामक सुन्दर प्रहसन में दाम्भिकचक्रवर्ती महामहोपाध्याय सभासलि

का चित्रण किया है। इनकी पत्नी का नाम कलहप्रिया था और उसने पीढ़े और हड्डी से मार मारकर अपने पति को घर से निकाल दिया था। महामहोपाध्याय वहाँ से सीधे कुट्टिनी के घर पहुँचे। मीमांसा और वेदान्त दर्शन के विद्वान फुंकट मिश्र और मिथ्याशुक्ल भी यहाँ आया करते थे। एक बार दोनो में कहा-सुनी हो गई और मिथ्याशुक्ल ने मिश्र जी की गर्दन पकड़ बाहर निकाल दिया।

स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति को राजीखुशी से स्वीकार नहीं करतीं। एक बार पाँव फिसला कि बस। एक बार किसी के चंगुल में आ गयीं तो फिर वेश्यावृत्ति का ही आश्रय लेना पडता है। फिर तो यही सोचने के लिये बाध्य होना पड़ता है कि जब तक जोबन की बहार है क्यो न उसे लुटा-कर जीने का मजा लिया जाय? क्यो एक कुलवधू की भाँति परावलंबी जीवन बिताया जाय? क्यो कठोर परिश्रम करके अपने शरीर को सुखाया जाय? और क्यों न पुरुषों की कमजोरी का फायदा उठाकर आसान तरीको से धन कमाकर जेबें भरी जायँ? फिर आगे बढ़ने पर तो दलदल ही दलदल है। उस असहाय युवती की कुछ भी समझ में नहीं आता कि वह क्या कर रही है और क्यो कर रही है। उसका जीवन यंत्रमय बन जाता है और ऐसा लगता है कि जीवन उसके शरीर को छोड़कर आगे-आगे भाग रहा है। कामुकों के लिये वह शरीर एक लोथ और पढ़े-लिखों के लिये एक समस्या बनकर रह जाती है।

संस्कृत में वेश्या को कुलटा, स्वैरिणी, प्रकाशविनष्टा, रूपाजीवा (अपने रूप से जीनेवाली), पुंश्चली, कामिनी, बंधकी (जो बहुतों से बँधी हो), वारवनिता, पण्यरमणी, पताकावेश्या, गणिका, साधारणी आदि नामों से उल्लिखित किया गया है। वे वेश, नृत्य, गीत, वक्रवीक्षण, मित्रवंचन, सुरतकला, रुदित, मानसंक्षय, निज जननी-कलह, अभ्यंग और कुट्टिनी आदि कलाओं में पारंगत होती थीं। क्षेमेन्द्र की समय-मातृका के अनुसार बाल वर्ष की अवस्था से उन्हें इन कलाओं की शिक्षा

दी जाती थी, पाँच वर्ष की होने पर पिता को उसका दर्शन निषिद्ध था। शिवजी और कृष्ण को वे अपना परम देवता मानती थीं। वैसे ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, बृहस्पति, वायु, पराशर और अत्रि आदि ऋषि-मुनियों के प्रेमपूर्ण आख्यान भी वे सुरुचि के साथ सुनती थीं।

वेश्या का काम धन कमाना था; और इसके लिये उसे अनेक जाल रचाने पड़ते थे। अपने यौवन के सौन्दर्यमद को एक तरफ हटाकर उसे कामुकों के मन को रंजित करना होता था जिसके लिये एक योगी की भाँति वृद्ध-युवा, ऊँच-नीच, रोग-निरोग सबके प्रति उसे समान भाव जताना पड़ता था। वैशिकशास्त्र में कहा है कि जैसे व्याघ्र से सदा डरना चाहिये वैसे ही वेश्याओं को किसी के प्रति सच्चा प्रेम करने से डरना चाहिये। वे किसी पतिव्रता के समान अपने प्रेमी की सेवा-शुश्रूषा कर सकती हैं, चाटुकारी, प्रेमपूर्ण वचनों से उसे रंजित कर सकती है, स्वप्न में उसका नाम ले लेकर प्रेम-प्रलाप कर सकती है, उसे खोटे वचन कहने के कारण अपनी माँ को डाँट-डपट सकती हैं, लेकिन किसी भी हालत में वास्तविक अनुराग का प्रदर्शन करने की उन्हे मनाही है। वेश्याओं की नीति राजनीति की भाँति बहुरंगी बताई है। कभी वे सत्य बोलकर, कभी मिथ्या भाषण कर, कभी कोमल बनकर, कभी कठोर बनकर, कभी धन की लालची बनकर और कभी उदार बनकर आचरण करती है, लेकिन इन सबका एक मात्र उद्देश्य धन प्राप्त करना ही है।

वैशिकतन्त्र में कहा है कि यदि जीवित कपट से धन की प्राप्ति न हो तो मरण-कपट का प्रयोग करे। एक बार जहाँ धन मिल गया तो वेश्या को चाहिये कि वह चूसे हुए गन्ने की भाँति, साँप द्वारा छोड़ी हुई कैंचुली की भाँति अथवा केशपाश से सूख कर गिरे हुए पुष्प की भाँति अपने कंगाल बने प्रेमी को छोड़ दे। मर्मभेदी कठोर वचनों से उसका अपमान करे, उसके आदर-सत्कार में शिथिलता दिखाये और फिर भी

यदि वह भीगीबिल्ली बनकर बैठ जाय तो अपनी माँ और दासियों से उसका अपमान करा कर घर से निकाल दे।

कुछ वेश्यायें ऐसी भी थीं जिनका प्रेम एकाध पुरुष पर ही केन्द्रित रहता था और अपने प्रेमी के परदेश चले जाने पर वे कुलवधू की भाँति एक वेणी बाँधकर विरहिणीव्रत स्वीकार करती थीं। वसन्तसेना, हारलता, कुमुदिका, देवदत्ता और वसन्ततिलका आदि कितनी ही वेश्यायें इस कोटि की थीं जिनके आख्यान प्राचीन साहित्य में मिलते हैं। बिन्दुमती गणिका के सम्बन्ध मे कहा है कि उसके सत्य के प्रभाव से गंगा का प्रवाह ही उलट गया था।

शील, रूप और गुणों से युक्त वेश्या कलाओं से ऊपर उठकर गणिका कही जाने लगी तथा जनसमाज में आदर का स्थान प्राप्त करती हुई राजा और गणो द्वारा मान्य की गई। राजा गणिकाओं को छत्र, चमर और व्यजन देकर सम्मानित करता, वे कर्णीरथ पर बैठकर चलतीं, हजार रुपये फीस लेतीं और बड़ी गणिकाये छोटी गणिकाओं पर प्रभुत्व करतीं। राजा के गणिकाध्यक्ष का इन पर नियंत्रण होता और वह उनकी मासिक आमदनी मे से दो दिन की आमदनी टैक्स के रूप मे वसूल करता।

बौद्धों के प्राचीन ग्रन्थो मे प्रधान गणिका को नगर की शोभा कहा गया है। उस समय नगर की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी को गणिका के पद पर अभिषिक्त किया जाता था। रूप और लावण्य की खान आम्रपाली वैशाली की प्रधान गणिका थी जो लिच्छविगण के द्वारा भोग्य थी। मदनसेनिका, पुष्पदासी, पराक्रमिका, रामदासी, मयूरसेना, कावेरिका आदि अनेक गणिकाओं और वेश्याओं के नाम साहित्य मे मिलते है जो अपने नगरो में सम्मान की दृष्टि से देखी जाती थीं।

गणिकाये तत्कालीन सामाजिक ढाँचे का एक महत्वपूर्ण अंग थीं। किसी एक व्यक्ति के प्रेमपाश में न पड़ने की जो उन्हें शिक्षा दी गई है

उसका तात्पर्य यही है कि समाज में उनका उच्च स्थान होने के कारण वे समाज के प्रति अपने कर्तव्य को निभा सकें। साधारण स्त्रियो की अपेक्षा विविध कलाओं में निष्णात होने के कारण भारतीय समाज में उनका वही स्थान था जो कि एथेन्स और ग्रीस की गणिकाओ का। आजकल जापान में गेशा का यही पद है। उसके यहाँ विविध विषयो पर महत्व-पूर्ण गोष्ठियाँ होती हैं और इन गोष्ठियो मे राजनीति के मसले हल किये जाते हैं। यूरोप मे मैडम दुबैरी, निवेन जोन शोर और नैल ग्विन आदि प्रणयिनियो ने शक्तिशाली राजा-महाराओं और राजनीतिज्ञों को आकृष्ट कर समाज में एक स्पृहणीय स्थान बनाया है।

रूप और यौवन ढल जाने पर वेश्याओ को माता का स्थान प्राप्त होता था और नई वेश्याओ की माता बनकर वे उन्हें शिक्षा देती थीं। इन्हें कुट्टिनी, शंभली, गणिकामाता, वेश्याजननी और दन्तुरा आदि नामो से उल्लिखित किया है। इनका शासन वेश्याशासन कहा जाता था जिसका उल्लंघन करना वेश्या के लिये कठिन था। शृङ्गारमंजरी और कुट्टिनीमत में कुट्टिनियो का सरस वर्णन मिलता है। विषमशीला, विकराला, चंडा, चंडघंटा, यमजिह्वा, एकदंष्ट्रा, ढोण्ढा, भुजंगवागुरा और मकरदंष्ट्रा आदि कुट्टिनियो के नामो के ऊपर से उनके चरित का अनुमान लगाया जा सकता है। प्राचीन काल में पाटलिपुत्र में कुट्टिनियो का बहुत जोर था।

वेश्याओ तक पहुँचाने मे विटो और धूर्तों का बहुत बड़ा हाथ रहता था। हरिभद्रसूरि ने धूर्ताख्यान मे मूलदेव, कंडरीक, एलाषाढ, शश और खडपाणा नामक पाँच प्रसिद्ध धूर्तों का उल्लेख किया है। क्षेमेन्द्र के कलाविलास में धूर्तों का सरस वर्णन है। भोलेभाले लोग उनके हाथ मे गेंद की भाँति उछलते और जैसे पक्षियो के बच्चे बिलाव से बचकर नहीं जा सकते, वैसे ही धूर्तों के चगुल से वे नहीं निकल सकते थे।

मूलदेव को अत्यंत मायावी, समस्त कलाओ में निष्णात धूर्तशिरो-मणि के रूप मे चित्रित किया गया है। जैसे वेश्याओं के कूट-कपट से

बचने के लिये सेठ-साहूकार अपने पुत्रों को कुट्टिनियों के पास भेजकर उन्हें वेश्याचरित की शिक्षा देते थे, उसी तरह धूर्तों के चंगुल से बचने के लिये उन्हें धूर्तविद्या सिखाई जाती थी। स्तेयशास्त्र का प्रवर्तक मूलदेव धूर्तविद्या का आचार्य था। धूर्तों के लिये दम्भ को मुख्य बताया है। जैसे जल में मछली की गति नहीं जानी जाती, वैसे ही दम्भ की गति जानना मुश्किल है। जैसे मन्त्र के बल से सर्प, कूटयन्त्र से हरिण और जाल से पक्षी पकड़े जाते हैं, वैसे ही दम्भ को मनुष्यों के पकड़ने का जाल कहा है। दम्भ का आधार माया है। दम्भ तीन प्रकार का है—बकदम्भ, कच्छपदम्भ, और मार्जारदम्भ। पहले को पति, दूसरे को राजा और तीसरे को चक्रवर्ती कहा है। कहते हैं ब्रह्मा ने दम्भ के कंठ में शिला बाँधकर उसे मर्त्यलोक में पटक दिया, और फिर वह वन और नगरों में घूमता हुआ गौडदेश में पहुँचा।

तीसरे भाग में ऐसी स्त्रियों की कथा है जो सामाजिक परिस्थितियों की शिकार बनकर अपनी रक्षा न कर सकीं। हिन्दुओं के प्राचीन शास्त्रों में स्त्रियों से सदा दूर रहने का उपदेश दिया है, लेकिन दमित यौन वासनाओं को रोकना मामूली काम नहीं ? शृंगारमंजरी में कहा है कि जब देखने मात्र से प्रेम करनेवाली कुलीन स्त्रियाँ भी अपने जीवन और धन की परवा न कर पर पुरुष से दिल लगाने लगती है तो फिर स्वतन्त्र जीवन बितानेवाली वेश्याओं की क्या बात है ?

अर्थप्रधान सामन्ती समाज में राजा महाराजा और सेठों की तूती बोलती थी और वे अपनी मनमानी करते थे। राजाओं के अन्तःपुर में रानियों की एक बड़ी संख्या होती थी। उनकी प्रेमपूर्ण इच्छाओं की अभिव्यक्ति के लिये कोई भी रास्ता नहीं था सिवाय इसके कि वे किसी और से प्रेम करने लगें। पट्टरानियों तक का यह हाल था।

कभी पति के कुरूप होने से अथवा सास-बहू की कलह के कारण कुलवधुओं को अन्य मार्ग स्वीकार करना पड़ता था। धूर्त और बदमाश

अक्सर ऐसी स्त्रियों की तलाश में रहते थे जो कुमारी है या जिनका पति परदेश गया है या जो असहाय अवस्था मे वैधव्य जीवन बिता रही है। ये लोग धन आदि का प्रलोभन देकर या अपने कला-कौशल आदि से भोली-भाली युवतियो को आकृष्ट कर चगुल में फँसा लेते और एक बार इनके चंगुल में आ जाने से उनके लिये बाहर निकलना असम्भव हो जाता। यह काम त्याग और वैराग्य का बाना पहननेवाली परिव्राजिकाओ तथा दूतियो से लिया जाता। परिव्राजिकायें जनानखाने में पहुँचकर दान-धर्म का उपदेश देतीं और फिर कोई चूर्ण, मन्त्र, तन्त्र, विद्या, गुटिका और औषधि आदि द्वारा युवतियो को फँसाकर किसी मन्दिर आदि मे ले जातीं। रोगी को अच्छा करने के बहाने उनका प्रेमी कोई वैद्य या ओझा बन जाता और फिर शेष कार्य बड़ी आसानी से सम्पन्न हो जाता।

इन कहानियो के अध्ययन से पता लगता है कि उन दिनो वणिज-व्यापार की मुख्यता थी और व्यापारी धन कमाने के लिये सुवर्णद्वीप, सिहलद्वीप और यवनद्वीप आदि दूर-दूर देशो में जाया करते थे। लोग वसन्त उत्सव खूब धूम से मनाते थे। इस अवसर पर युवक और युवतियाँ एकत्रित होतीं और हँसी-मजाक चलता। कामदेव की यात्रा निकलती। पंचायते थीं, लेकिन राजा और उसके प्रधान कर्मचारियो से न्याय की आशा कम ही की जाती थी। किसी के पुत्र का अकालमरण हो जाने पर उसकी सम्पत्ति राजकोष मे जमा कर दी जाती। छुआछूत और खानपान का विचार मौजूद था।

हर्ष की बात है कि ये कहानियाँ डॉक्टर मौरिस को पसन्द आईं भारतीय संस्कृति के यथार्थवादी लौकिक पक्ष के समर्थन-स्वरूप मित्रो के अनुरोध से इन्हें यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है इन्हें पढ़कर पाठकों को विचार की कुछ प्रेरणा प्राप्त हो सकेगी।

२८ शिवाजी पार्क,
बम्बई २८
१३ अक्टूबर, १९६१

जगदीशचन्द्र जैन

सूची

पहला भाग

१	नर्मदासुन्दरी	३
२	शीलवती की चतुराई	१४
३	रूपवती तारा	२१
४	नगरी के न्यायी पुरुष	२६
५	पक्षी का जोड़ा	३३
६	राजा विक्रम और सुन्दरी	३८

दूसरा भाग

७	कुमुदिका के हृदय की थाह	४७
८	देवदत्ता और मूलदेव	५१
९	कामलता का मरण-कपट	५७
१०	पुरुषों का प्रेम	६५
११	वसंततिलका और धम्मिल्ल	६९
१२	देवदत्ता का कला-कौशल	७५
१३	यमजिह्वा का बन्दर	८०

तीसरा भाग

१४	सिंहलद्वीप की रानी रत्नवती	८९
१५	दो बहुमूल्य उपदेश	९४
१६	जो खोजे सो पावै	१००
१७	पराई लक्ष्मी का उपभोग	१०७

१८ धूर्तराज मूलदेव १११
१९ शंब का साहस ११३
२० विश्वासपात्र कौन ? ११५
२१ नूपुरपंडिता की परीक्षा ११९
२२ नागिनी का कपटजाल १२६
२३ तिरियाचरित १३३
२४ रानी रत्नदेवी १३६
२५ युवतिचरित की शिक्षा १३९
२६ सुकुमालिका का पतिव्रत १४४
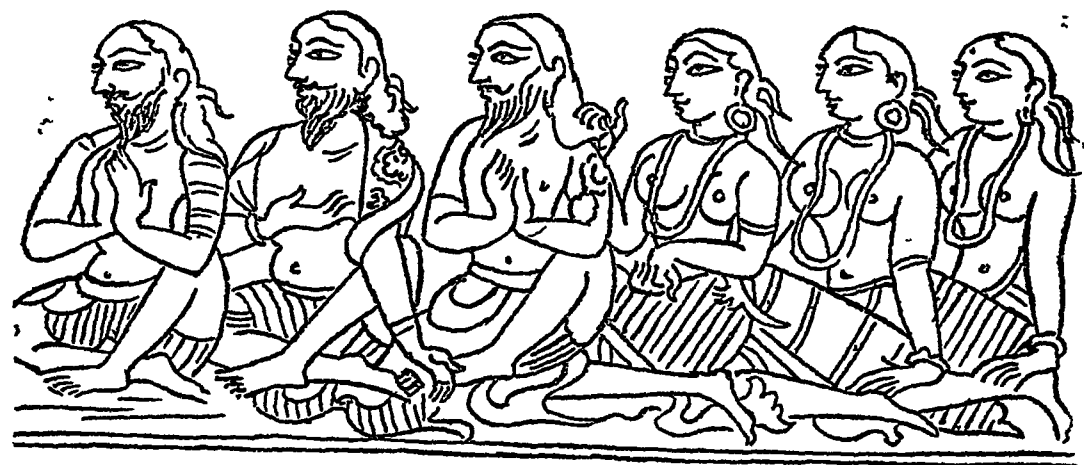
पहला भाग

१ : नर्मदासुन्दरी

नर्मदा नदी के किनारे नर्मदापुर नाम का एक नगर था, जहाँ महेश्वरदत्त नाम का एक व्यापारी रहा करता था। उसकी स्त्री का नाम था नर्मदासुन्दरी।

एक बार की बात है, महेश्वरदत्त ने यवनद्वीप जाकर धनोपार्जन करने का विचार किया। यात्रा की सब तैयारियाँ हो चुकने के बाद वह अपनी स्त्री से मिलने गया और अपनी अनुपस्थिति में सास-ससुर की सेवा करते रहने का उपदेश दिया।

नर्मदासुन्दरी का दिल भर आया। उसने कहा—"प्राणनाथ! आपके बिना मैं कैसे जीवित रहूँगी।" शास्त्रों में कहा है—

"भर्ता ही स्त्रियों की गति है, वही शरण है, वही जीवन है। भर्ता के बिना स्त्रियों को सैकड़ों-हजारों दुःख भोगने पड़ते हैं।"

महेश्वरदत्त ने समुद्रयात्रा की भीषणता का चित्र खींचा, लेकिन नर्मदासुन्दरी पर कोई असर न हुआ। आखिर वह उसे अपने साथ ले चलने के लिये राजी हो गया।

नर्मदा-तट पर पहुँच महेश्वरदत्त अन्य व्यापारियो के साथ जहाज मे सवार हो यवनद्वीप के लिये रवाना हो गया। रास्ते मे भयानक मगर-मच्छ दिखाई दिये और अनेक बार जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित हुआ, लेकिन सौभाग्य से बिना किसी संकट के रास्ता कट गया।

एक बार की बात है, आधी रात के समय कोई पुरुष मधुर कंठ से गा रहा था। गाना नर्मदा को बहुत अच्छा लगा, और वह गायक पर मुग्ध हो गई। महेश्वरदत्त ने सोचा, कहीं नर्मदा इससे प्रेम न करने लगी हो। कहा भी है—"जैसे मक्खियाँ चन्दन को छोड़कर अपवित्र वस्तु पर ही बैठती है, वैसे ही स्त्रियाँ भी ऐसे-वैसे पुरुषों से रंजित होती है। अत्यन्त रूपवान पुरुषो से वे लज्जा करती है, पंडित जनो से डरती है और काने-कुबड़ो को चाहती है।"

महेश्वरदत्त ने सोचा कि पहले विरहजन्य दुःख का डर दिखाकर इसने घर रहने से इन्कार कर दिया और अब यह अपने मायाजाल से मुझे ठगना चाहती है। किसी ने ठीक ही कहा है—

"समुद्र का जल कदाचित् मापा जा सकता है, वीर पुरुष कदाचित् मन्दर पर्वत को तोल सकते है, लेकिन कूट-कपट से भरा महिलाओ का चरित कोई भी नहीं जानता।"

रास्ते में भूतरमण नाम का एक निर्जन द्वीप पड़ता था। महेश्वरदत्त वहाँ उतरा और नर्मदासुन्दरी को एक वृक्ष की छाया में सोती छोड चलता बना।

नर्मदा की आँख खुली तो अपने पति को वहाँ न देख वह भयभीत हो गई। पहले तो उसने समझा कि शायद वह कहीं पास ही मे गया हो

लेकिन उसके बहुत देर तक न लौटने पर वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी। फिर मूर्च्छा टूटने पर करुण विलाप करने लगी।

संयोग की बात, इसी समय नर्मदा के चाचा वीरदेव ने नर्मदापुर से बब्बरकूल के लिये प्रस्थान किया और वह इसी द्वीप में आकर उतरा। इसे भी संयोग ही कहना चाहिये कि उसकी यहाँ नर्मदासुन्दरी से भेंट हो गई। नर्मदासुन्दरी को अपने चाचा से मिलकर परम संतोष हुआ।

अस्तु, व्यापारियों का काफला आगे बढ़ा और हवा के अनुकूल होने से शीघ्र ही जहाज बब्बरकूल जा लगा।

यहाँ बब्बर नगर में इन्द्रसेन नाम का राजा राज्य करता था। विदेशी व्यापारियों का वह खास तौर से सम्मान किया करता था।

इस नगर में वेश्याओं का एक मोहल्ला था जहाँ सात सौ वेश्याओं की स्वामिनी, चौसठ कलाओं में निपुण हरिणी नाम की एक रूपवती वेश्या निवास करती थी। ये वेश्यायें अपने कमाये हुए धन को अपनी स्वामिनी को सौंप देतीं और स्वामिनी उसका एक चौथाई हिस्सा राजा को देती।

हरिणी को जब पता लगा कि हिन्दुस्तान से एक जहाज आया है जिसका मालिक वीरदास है तो उसने अपनी दासियों के हाथ उसके पास कीमती वस्त्रों का एक जोड़ा भिजवाया। वीरदास के पास पहुँचकर दासियों ने उसे हरिणी का आतिथ्य स्वीकार करने की प्रार्थना की। लेकिन वीरदास ने आठ सौ द्रम्म देकर उन्हें लौटा दिया।

हरिणी को बहुत क्रोध आया। उसने कहा कि जान पड़ता है यह व्यापारी मेरा अपमान करने पर तुला है। लोग क्या कहेंगे कि बुलाने पर भी वह नहीं आया? दासियों को उसने वीरदास का रुपया लौटा देने का आदेश दिया। दासियों ने वीरदास से निवेदन किया—"महाराज! धन की दरकार हमारी स्वामिनी को नहीं, वह चाहती है कि

अपने आगमन से आप उसके घर को पवित्र करें।" लेकिन वीरदास राजी न हुआ।

अबकी बार हरिणी ने अपनी सबसे चतुर दासी को वीरदास के पास भेजा। इस समय वीरदास से बात करते हुए उसने स्निग्ध चंचल नेत्रों द्वारा बार-बार निहारती हुई एक सुन्दर युवती को देखा जिसकी अनुपम रूपराशि ने उसे चकित कर दिया। दासी ने वीरदास से बहुत अनुनय-विनय की और किसी तरह उसे चलने के लिये राजी कर लिया।

वीरदास हरिणी के घर पहुँचा तो हरिणी ने उसका बहुत आदर-सत्कार किया। उबटन लगाकर उसे स्नान कराया, चन्दन का लेप किया, कीमती वस्त्र पहनाये और नजर से बचाने के लिये स्याही वगैरह लगाई। फिर वह अनेक चाटु वचनों से उसे लुभाने लगी।

सुन्दर युवती की बात दासी ने हरिणी से कही। हरिणी ने मन ही मन एक युक्ति सोची। पहले तो वह स्नेहपूर्ण हाव-भावों का प्रदर्शन कर वीरदास को लुभाती रही। फिर उसने जूआ खेलने का प्रस्ताव किया।

हरिणी को प्रसन्न करने के लिये वीरदास जूआ खेलने के लिये तैयार हो गया। चौसर बिछी और खेल शुरू हो गया। इस बीच में मौका पाकर हरिणी वीरदास की अंगूठी को बड़े कौतूहल से देखने लगी। फिर तुरत ही दासी को बुलाकर सुनार से उसी तरह की एक अंगूठी गढ़वा लाने का उसने आदेश दिया।

वीरदास की अंगूठी लेकर दासियाँ तुरत ही नर्मदासुन्दरी के पास आई और कहने लगीं—"तुम्हारे आदमी ने तुम्हें फौरन ही बुलाया है, उसकी तबीयत अचानक बिगड़ गई है। अपने नाम की यह अंगूठी उसने भेजी है।"

नर्मदा बड़े असमंजस में पड़ गई। लेकिन अपने चाचा की अंगूठी देखकर उसे विश्वास हो गया कि अवश्य ही कोई बात है।

नर्मदा जल्दी से कपड़े पहनकर तैयार हो गई। दासियो ने उसे हरिणी के घर के पिछले दरवाजे से ले जाकर एक भौंतले में बन्द कर दिया।

नर्मदासुन्दरी को स्थिति समझते देर न लगी। वहाँ उसने हरिणी को देखा तो वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। होश आने पर रोकर कहने लगी— 'क्या इस नगरी मे कोई राजा नहीं जो मेरे साथ इस तरह धोखा किया गया ?"

अंगूठी वीरदास को लौटा दी गई। वह अपने घर चला गया।

घर आने पर वीरदास ने वहाँ नर्मदा को नहीं पाया तो उसके दुख का ठिकाना न रहा। उसने इधर-उधर बहुत पूछताछ की लेकिन कोई कुछ न बता सका। राजा से कहकर उसने नगर भर में डौंडी पिटवा दी कि जो कोई नर्मदा का पता देगा उसे उसके वजन के बराबर सोना इनाम में दिया जायगा। लेकिन कोई नतीजा न निकला।

वीरदास को बड़ी निराशा हुई। उसने अपना सिर धुन लिया। वीरदास के साथियों ने उसे ढाढ़स बँधाया। उन्होंने कहा कि इम लोगों के यहाँ रहते हुए नर्मदा का पता लगना असंभव है, इसलिये अब घर लौट चलना चाहिये; बाद में गुप्त रूप से आकर उसका पता लगाया जाये। बात सब को जँच गई। सब व्यापारियो ने अपना-अपना माल जहाज मे भरा और नर्मदानगर के लिये चल पड़े।

नर्मदासुन्दरी का बुरा हाल था। भौंतले में रोते-बिलखते उसे सारी रात बीत गई। अगले दिन हरिणी ने उसके लिये खाना भिजवाया। उसने कहा—"देखो, वह तुम्हारा प्रेमी बनिया मेरी फीस देकर नहीं गया, इसलिये तुम्हें यहाँ रखा गया है। जब वह फीस दे देगा तो तुम्हे छोड़ दूँगी। यह बात नहीं कि वह फीस देना भूल गया हो। तुम जानती हो, बनियो को अपने पिता, पुत्र, माता और स्त्री की अपेक्षा धन अधिक प्यारा होता है। इसलिये उन्हे यदि कभी किसी का रुपया चुकाना भी होता है तो

उसे चुकाते हुए उन्हे कष्ट होता है। देखो यदि तुम उसे प्यारी हो तो उसे शीघ्र ही मेरी फीस दे देनी चाहिये, और फिर मै तुम्हे फौरन ही छोड़ दूँगी।"

नर्मदा ने कहा—"यदि ऐसी बात है तो तुम मुझे छोड़ दो, जितना कहोगी, दुगुना, तिगुना धन तुम्हें दिलवा दूँगी।" यह कहकर नर्मदा ने अपना दाहिना हाथ बढ़ाकर कसम खाई।

लेकिन हरिणी ने उत्तर दिया—"तेरी कसम का मुझे कोई भरोसा नहीं। तुझे भोजन करना हो तो कर, नही तो उपवासी बैठी रह। मेरा क्या बिगड़ता है?" यह कहकर हरिणी उठकर चली गई।

नर्मदा ने भोजन नहीं किया। तीसरे दिन भी उसे खिलाने की कोशिश बेकार हुई। चौथे दिन उसे फिर से खाने का आग्रह किया गया। अबकी बार उसने थोड़ा-सा खा लिया।

हरिणी को जब पता चला कि व्यापारी अपने घर लौट गये हैं तो वह प्रसन्न हुई। नर्मदासुन्दरी से वह कहने लगी—"देखा, अपने बनिये को, तुझे छोड़कर भाग गया! ऐसे आदमी को धिक्कार है जो पैसे के लिये अपनी प्रेमिका को भी छोड़ देता है। लेकिन तू चिन्ता न कर। मेरे घर आराम से रह। यदि तू मेरे कहे अनुसार चलेगी तो तेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।"

नर्मदासुन्दरी ने उत्तर दिया—"अब तो तुम ही मेरी सब कुछ हो।" हरिणी ने उसे भौतले से निकालकर अपने घर मे रख लिया।

एक दिन हरिणी कहने लगी—"नर्मदा! तुम जानती हो, मनुष्य जन्म कितना दुर्लभ है। जवानी क्षणभंगुर है, विशिष्ट सुख को प्राप्त करना ही इसका एकमात्र फल है, और तुम्हे मालूम है यह सुख पूर्णरूप से वेश्याओ को ही मिल सकता है, कुलवधुओ को नहीं। जैसे विशिष्ट प्रकार का नया-नया भोजन जीभ को स्वादिष्ट लगता है, उसी प्रकार रोज-रोज नये-नये पुरुष संभोग का आनन्ददायी सुख प्रदान करते हैं।

इसके सिवाय, वेश्याये स्वच्छन्द विहार करती है, अमृत के समान मद्य का पान करती है। वेश्यावस्था साक्षात् स्वर्ग है। तुम जानती हो, तुम्हारे रूप-सौंदर्य से लुब्ध होकर पुरुष तुम्हारे किंकर बन जायेंगे, तुम्हारे वश होकर वे तुम्हें मनचाहा धन देंगे, और एक बात तुम और समझ लो कि ये सब वेश्याये मुझे अपनी कमाई का आधा हिस्सा देती हैं, लेकिन मै तुमसे केवल चौथाई ही लूँगी।"

यह सुनकर नर्मदासुन्दरी दंग रह गई। उसने कहा—"यह आचरण तुम लोगों को ही शोभा देता है। मै यह वृत्ति अपनाने को किसी भी हालत में तैयार नहीं; हाँ और जो कहो करने को तैयार हूँ।"

हरिणी ने उत्तर दिया—"तुम नहीं जानती, अपने शरीर को पुरुषो को प्रदान करने से बढ़कर इस संसार में और कौन-सा धर्म हो सकता है? फिर इस तरह उपार्जित धन को किसी धार्मिक कार्य में लगा देने से कितना पुण्य मिलेगा! धन से ही सुख मिलता है, निर्धन को अपना पेट तक भरना दूभर हो जाता है।" नर्मदा ने कहा—"मौसी! तुम कहो तो मै बारीक सूत कातकर या विविध व्यंजन और पक्वान बनाकर धन कमा सकती हूँ, लेकिन यह कर्म करने के लिये तैयार नहीं।"

हरिणी को बड़ा गुस्सा आया। उसने कहा—"यदि तू शान्ति से मेरी बात नहीं मानती तो डण्डे के जोर से तुझे मनवाऊँगी।"

यह कहकर उसने एक दुष्ट कामुक पुरुष को नर्मदा के पास भेज दिया। फिर उसने कनेर की लम्बी कम्मचें मँगवाईं और नर्मदा की खूब मरम्मत की। वह उसे लगातार तीन महीने तक भयंकर कष्ट देती रही।

करिणी नाम की एक और वेश्या वहाँ रहती थी। नर्मदा की हालत देख उसे दया आ गई। एक दिन करिणी नर्मदा को समझाकर कहने लगी—"देख बहन! तू क्यो इतना कष्ट सह रही है? यदि तू हरिणी की आज्ञानुसार चले तो तेरे सब दुख दूर हो जायँ। इससे दूसरो को भी

सुख मिलेगा और हरिणी भी प्रसन्न होगी।" लेकिन नर्मदा ने बार-बार यही उत्तर दिया कि मुझे मरना मंजूर है, लेकिन वेश्यावृत्ति मैं कभी स्वीकार नहीं कर सकती।

एक दिन करिणी ने हरिणी के पास जाकर निवेदन किया—"हे स्वामिनि! क्या आपने बिचारी नर्मदा को जान से मार डालने का ही इरादा कर लिया है?"

हरिणी ने उत्तर दिया—"इस दुष्टा के कारण ही तो वीरदास ने मेरे घर आने से मना कर दिया था। यह तो मेरी जनम-जनम की वैरिणी है।" करिणी ने कहा—"लेकिन स्वामिनि! आप यह क्या कहती हैं, वीरदास तो इसका चाचा लगता है। तीन महीने तक अनेक कष्ट देने पर भी जब इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ तो अब इससे क्या आशा की जा सकती है? स्वामिनि! इसकी हत्या के पाप को आप अपने सिर न लें। मेरी राय में तो यदि आप इसे घर के काम-काज में लगा दें तो अच्छा रहे।"

नर्मदासुन्दरी हरिणी की रसोई की देखभाल करने लगी।

इस तरह बहुत दिन बीत गये।

एक दिन की बात है, हरिणी के पेट में जोर का दर्द हुआ। अनेक वैद्य बुलाये गये, लेकिन उसे कोई अच्छा न कर सका।

हरिणी इस लोक से कूच कर गई।

उसके अन्त्य संस्कार किये गये। उसके बाद नगर के पंच इकट्ठे हुए और गाजे-बाजे के साथ नर्मदासुन्दरी को नगर की प्रधान गणिका के पद पर अभिषिक्त किया गया।

एक बार की बात है, कोई छैल-छबीला नौजवान कामुक नर्मदा-सुन्दरी के पास आया। लेकिन उसे पता लगा कि नर्मदा किसी पुरुष से नहीं मिलती तो उसने राजा को सूचित किया। उसने कहा—"महाराज! नर्मदासुन्दरी इस नगर की सबसे रूपवती स्त्री है। यदि यह सुन्दरी

आपके अन्तःपुर को पवित्र नहीं करती तो आपके रूप, यौवन और राज्य से क्या लाभ !"

यह सुनकर राजा ने अपने दण्डरक्षक को नर्मदासुन्दरी को बुलाने भेजा। राजा का आदेश पाकर नर्मदा वस्त्र और अलंकार आदि पहन पालकी में बैठ राजा से मिलने चल दी। रास्ते मे पानी की एक बावड़ी पड़ी, उसे देखकर नर्मदा ने पानी पीने की इच्छा व्यक्त की।

दण्डरक्षक ने नर्मदा को पालकी से उतार दिया। लेकिन बावड़ी के पास पहुँचते ही वह फिसल कर गिर पड़ी। फिर अट्टहासपूर्वक चिल्लाकर कहने लगी—"क्या राजा ने मेरे' लिये यही आभूषण भेजा है?" यह कहकर उसने अपने शरीर पर कीचड़ लपेट ली।

दण्डरक्षक ने कहा—"अरी स्वामिनि ! यह क्या?" और वह उसकी ओर बढ़ा। नर्मदा ने उत्तर दिया—"अरे ! तू राजा की रानी को अपनी रानी बनाना चाहता है?" यह कहकर दंडरक्षक के मुँह पर कीचड़ फेंक कर मारी।

इतने में भूतनी-भूतनी का शोर मच गया। नर्मदा भी नेत्रों को फाड़, जीभ निकाल, गीदड़ की बोली बोलती हुई भीड़ की ओर दौड़ी।

दण्डरक्षक ने राजा के पास पहुँचकर उसे सब हाल सुनाया। राजा ने फौरन ही एक भूतवादी को बुलाकर नर्मदा की चिकित्सा करने का आदेश दिया। भूतवादी ने बताया कि मन्त्र-तन्त्र इस व्याधि को अच्छा नहीं कर सकते, इसके लिये तो रोगी की इच्छा पूरी करना आवश्यक है। यह सुनकर राजा ने घोषणा करा दी कि कोई अपराध हो जाने पर भी जो कोई राजवल्लभा को हानि पहुँचायेगा उसे दण्ड दिया जायगा।

इधर नर्मदासुन्दरी हाथ मे खप्पर लिये घर-घर भीख माँगती हुई फिरने लगी। कभी वह अपने शरीर पर कीचड़ मल लेती, कभी राख लगा लेती, कभी पुराने चीथडे लपेट लेती, कभी सिर पर कचरा रख

२ : शीलवती की चतुराई

नंदनपुर नगर में रत्नाकर नाम का एक सेठ रहता था । श्री उसकी स्त्री का नाम था । अजितबला देवता की उपासना करने से उसके एक पुत्र हुआ इसलिये उसका नाम अजितसेन रखा गया ।

बड़े होकर अजितसेन ने विविध कलाओं की शिक्षा प्राप्त की । रत्नाकर ने चाहा कि किसी अच्छी कन्या से अपने पुत्र का विवाह कर दे, लेकिन योग्य कन्या न मिली ।

एक दिन कोई वणिक्पुत्र रत्नाकर से मिलने आया । बनिज-व्यापार की बात हो चुकने के बाद कयंगला नगरी के जिनदत्त सेठ की कन्या शीलवती के रूप-गुण की प्रशंसा करते हुए उसने बताया कि वह अजित-सेन के लिये ठीक रहेगी ।

कुछ समयबाद अजितसेन और शीलवती का विवाह हो गया ।

एक दिन की बात है, आधी रात के समय शीलवती घड़ा लेकर बाहर गई और बहुत देर बाद लौटी। यह देखकर शीलवती के ससुर को उस पर संदेह हुआ। उसने सोचा—

"अतिशय प्रेम के वशीभूत, उन्मार्ग से जानेवाली और गुणों के नाश हो जाने से कलुषित महिला अपने दोनों कुलों को कलंकित करती है।"

शीलवती के ससुर ने अपने बेटे से कहा—"देखो, बेटा! शीलवती को उसके पीहर भेज देना ही ठीक है।" उसने उत्तर दिया—"पिता जी! जैसा आप ठीक समझें।"

शीलवती का ससुर अपनी पतोहू को रथ में बैठाकर चल दिया। रास्ते में एक नदी पड़ी। ससुर ने कहा—"बहू! जूते उतार कर नदी पार करना।" लेकिन उसने जूते नहीं उतारे। ससुर सोचने लगा—"यह बड़ी जिद्दी मालूम होती है।"

आगे चलकर मूँग का खेत दिखाई दिया। ससुर ने कहा—"यह खेत कितना अच्छा फल रहा है! खेत का मालिक इसकी फसल का उपयोग करेगा।" शीलवती ने उत्तर दिया—"यदि खाया न जाय तो।" ससुर ने सोचा, यह भी कैसी ऊटपटांग बात करती है।

कुछ दूर चलकर एक नगर में पहुँचे। ससुर ने कहा—"कितना सुन्दर नगर है!" शीलवती ने उत्तर दिया—"यदि कोई उजाड़ न दे तो।"

आगे चलने पर एक घायल कुलपुत्र मिला। ससुर ने कहा—"यह कितना शूरवीर है!" शीलवती ने उत्तर दिया—"यदि पीटा न गया हो तो।" ससुर ने कहा—"यह भी कैसी बात करती है? क्या वह शूरवीर नहीं जो शस्त्रों से घायल हो गया है?"

कुछ दूरी पर शीलवती का ससुर एक वट वृक्ष की छाया में विश्राम करने बैठ गया। शीलवती जरा दूर ही बैठी। उसके ससुर ने छाया में

लेती, कभी नाचती, कभी हँसती और कभी लोगों के पाँव पड़ती। कभी वह सूने घरों में और कभी पुराने मन्दिरों मे रहती और चिल्ला-चिल्लाकर कहती—"लोग कहते है मुझे भूत चढ़ा है, लेकिन मुझे भूत-प्रेत की कोई बाधा नहीं है। मुझे तो भीख माँग कर खाना अच्छा लगता है।"

कुछ समय बाद वीरदास का भेजा हुआ भडोच का निवासी जिनदेव नामका एक व्यापारी वहाँ घी बेचने आया।

नर्मदासुन्दरी को छुड़ाने के लिये उसने एक युक्ति सोची। राजा के महल के पास एक चौराहे पर उसने अपने घी के घड़े रख दिये। नर्मदा उधर से आई और पत्थर फेंक-फेंककर घड़े फोडने लगी। यह देखकर जिनदेव रोने-पीटने लगा। भीड़ इकट्ठी हो गई। लोग कहने लगे—'देखो, यह राजा भी कितना मूर्ख है जो इस भूतनी को अपने नगर से नहीं निकालता। इस तरह तो कोई भी परदेशी व्यापारी यहाँ न आयेगा।"

राजा ने यह सुना तो उसने सोचा बात तो ठीक है। इससे परदेश में मेरा नाम खराब होगा और कोई व्यापारी माल लेकर यहाँ न आयेगा।

इधर जिनदेव रोता-चिल्लाता राजा के दरबार में पहुँचकर कहने लगा—"महाराज! हम लोग खतरा मोल लेकर कितनी दूर से यहाँ आये हैं, और यह देखिये घी की यहाँ नदी बह रही है। कर्ज लेकर हमने यह माल खरीदा था, अब क्या मुँह लेकर हम घर लौटेंगे?"

राजा ने उत्तर दिया—"जिस औरत ने तुम्हारे घडे फोड़े हैं, वह भूतनी है, इसमें किसी का क्या दोष? तुम्हारे घी की कीमत हम कैसे दे सकते हैं? हाँ, चाहो तो तुम इस औरत को ले जाओ जिससे फिर कभी तुम्हारे माल का नुकसान न हो।"

जिनदेव ने कहा—"महाराज ! मुझे स्वीकार है, लेकिन शर्त यह है कि मेरे माल पर कर न लिया जाय।"

जिनदेव ने विक्षिप्त अवस्था मे अट्टहास करती हुई नर्मदासुन्दरी को एक रस्से से बाँध लिया और जहाज पर बैठा कर उसे अपने देश ले गया।

●

२ : शीलवती की चतुराई

नदनपुर नगर में रत्नाकर नाम का एक सेठ रहता था। श्री उसकी स्त्री का नाम था। अजितबला देवता की उपासना करने से उसके एक पुत्र हुआ इसलिये उसका नाम अजितसेन रखा गया।

बड़े होकर अजितसेन ने विविध कलाओं की शिक्षा प्राप्त की। रत्नाकर ने चाहा कि किसी अच्छी कन्या से अपने पुत्र का विवाह कर दे, लेकिन योग्य कन्या न मिली।

एक दिन कोई वणिक्पुत्र रत्नाकर से मिलने आया। बनिज-व्यापार की बात हो चुकने के बाद कयंगला नगरी के जिनदत्त सेठ की कन्या शीलवती के रूप-गुण की प्रशंसा करते हुए उसने बताया कि वह अजितसेन के लिये ठीक रहेगी।

कुछ समयबाद अजितसेन और शीलवती का विवाह हो गया।

एक दिन की बात है, आधी रात के समय शीलवती घड़ा लेकर बाहर गई और बहुत देर बाद लौटी। यह देखकर शीलवती के ससुर को उस पर संदेह हुआ। उसने सोचा—

"अतिशय प्रेम के वशीभूत, उन्मार्ग से जानेवाली और गुणों के नाश हो जाने से कलुषित महिला अपने दोनों कुलों को कलंकित करती है।"

शीलवती के ससुर ने अपने बेटे से कहा—"देखो, बेटा! शीलवती को उसके पीहर भेज देना ही ठीक है।" उसने उत्तर दिया—"पिता जी! जैसा आप ठीक समझें।"

शीलवती का ससुर अपनी पतोहू को रथ में बैठाकर चल दिया। रास्ते में एक नदी पड़ी। ससुर ने कहा—"बहू! जूते उतार कर नदी पार करना।" लेकिन उसने जूते नहीं उतारे। ससुर सोचने लगा—"यह बड़ी जिद्दी मालूम होती है।"

आगे चलकर मूँग का खेत दिखाई दिया। ससुर ने कहा—"यह खेत कितना अच्छा फल रहा है! खेत का मालिक इसकी फसल का उपयोग करेगा।" शीलवती ने उत्तर दिया—"यदि खाया न जाय तो।" ससुर ने सोचा, यह भी कैसी ऊटपटांग बात करती है।

कुछ दूर चलकर एक नगर में पहुँचे। ससुर ने कहा—"कितना सुन्दर नगर है!" शीलवती ने उत्तर दिया—"यदि कोई उजाड़ न दे तो।"

आगे चलने पर एक घायल कुलपुत्र मिला। ससुर ने कहा—"यह कितना शूरवीर है!" शीलवती ने उत्तर दिया—"यदि पीटा न गया हो तो।" ससुर ने कहा—"यह भी कैसी बात करती है? क्या वह शूरवीर नहीं जो शस्त्रों से घायल हो गया है?"

कुछ दूरी पर शीलवती का ससुर एक वट वृक्ष की छाया में विश्राम करने बैठ गया। शीलवती जरा दूर ही बैठी। उसके ससुर ने छाया में

बैठने को कहा, लेकिन वह वहीं बैठी रही। ससुर ने सोचा—"यह भी अजीब है जो सदा उलटा ही काम करती है।"

थोड़ी दूर चलने पर दोनों एक गाँव में पहुँचे। यहाँ शीलवती का मामा रहता था। उसने दोनों को भोजन के लिये निमंत्रित किया। भोजन करने के बाद उसका ससुर रथ के अन्दर लेट गया। शीलवती रथ की छाया में बाहर ही बैठी रही।

इस बीच में वहाँ बबूल के पेड़ पर बैठा हुआ एक कौआ काँव-काँव करने लगा। शीलवती ने कहा—"अरे! तू काँव-काँव करता हुआ थकता नहीं?" फिर उसने एक गाथा पढ़ी—

"एक दुर्नीति करने से मुझे घर से बाहर निकलना पड़ा, अब यदि दूसरी दुर्नीति करूँगी तो प्रियतम से सदा के लिये विछोह हो जायगा।"

ससुर ने गाथा का मतलब पूछा तो शीलवती ने उत्तर दिया—

"देखिये ससुर जी! अपनी सुगंध के कारण ही चन्दन को काट कर लोग घिसते हैं और अपने रंग के कारण ही मजीठ के टुकडे कर उसे पानी में उबालते हैं। इसी तरह मेरे गुण भी मेरे शत्रु हो गये हैं, क्योंकि मैं दुर्भाग्य से पक्षियों की बोली समझती हूँ। उस दिन रात के समय गीदड़ी का शब्द सुनकर मुझे मालूम पड़ा कि एक मुर्दा नदी में बहा जा रहा है, और उसके शरीर पर बहुमूल्य आभूषण है। मैं फौरन ही घड़ा उठा कर नदी पर पहुँची। नदी में घुसकर पहले मैंने मुर्दे को निकाला। फिर उसके आभूषणों को घड़े में भर लिया और उसकी लाश गीदड़ी के खाने के लिये छोड़ दी। इस प्रकार ससुर जी! एक दुर्नीति के कारण मैं इस अवस्था को प्राप्त हुई हूँ। अब यह कौआ कह रहा है कि इस बबूल के नीचे दस लाख का धन गड़ा है।"

शीलवती का ससुर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने वहाँ से गड़ा हुआ धन निकाल लिया और अपनी पतोहू को सम्मानपूर्वक रथ में बैठाकर वापस ले आया।

रास्ते में वट का वृक्ष देखकर ससुर ने पूछा—"बहू! तू इसकी छाया मे क्यों नहीं बैठी?" शीलवती ने उत्तर दिया—"वृक्ष की जड़ मे सॉप का डर रहता है; बहुत देर तक बैठे रहने से चोरों की आशंका रहती है और ऊपर से पक्षी बीट कर देते हैं।"

कुलपुत्र के बारे में शीलवती ने कहा—"जो मार न खाये वह शूरवीर नहीं, लेकिन असली शूर पहले चोट नहीं करता।"

नगर के सम्बन्ध में उसने बताया—"जिस नगर के लोग अभ्यागतो का स्वागत नहीं करते, वहॉ रहने से क्या लाभ?"

खेत के सम्बन्ध में उसने उत्तर दिया—"व्यापार में पैसे की बढ़ती होने से यदि खेत का मालिक पैसे का उपभोग करे तो ही उसे उपभुक्त समझना चाहिये।"

नदी के बारे में उसने बताया कि नदी में जीव-जन्तु और कॉटो का डर रहता है, इसलिये नदी पार करते समय उसने जूते नहीं उतारे।

शीलवती का ससुर अपनी पतोहू के उत्तरों से प्रसन्न हुआ और उसने उसे अपने घर की मालकिन बना दिया।

उस नगर के राजा के ४९९ मन्त्री थे, एक प्रधान मन्त्री की कमी थी। प्रधान मन्त्री की खोज आरम्भ हुई।

राजा ने घोषणा की कि जो कोई इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर देगा, उसे प्रधान मन्त्री का पद मिलेगा। प्रश्न था कि जो कोई राजा पर अपनी लात से प्रहार करे उसे क्या दण्ड दिया जाये? सब ने यही उत्तर दिया—"उसे कड़ा से कड़ा दण्ड देना चाहिये।"

अजितसेन ने प्रश्न का उत्तर देने के लिए कुछ समय मॉगा। फिर शीलवती से पूछताछ कर उसने बताया—"महाराज! आपकी प्राण-वल्लभा के सिवाय और किसकी हिम्मत है जो इस तरह की हरकत कर सके। इसलिये उसका तो सत्कार ही करना चाहिये।"

उत्तर सुनकर राजा प्रसन्न हुआ और अजितसेन को प्रधान मन्त्री का पद मिल गया।

एक बार की बात है, अजितसेन को राजा के साथ कहीं परदेश जाना पड़ा। जाते समय शीलवती की ओर से उसे बड़ी चिन्ता हुई, लेकिन शीलवती ने कहा—

"प्राणनाथ! मेरी आप बिलकुल ही चिन्ता न करें। अग्नि शीतल हो सकती है, सूर्य पश्चिम में उग सकता है, मेरु का शिखर कम्पायमान हो सकता है, पृथ्वी उछल सकती है, वायु स्थिर हो सकता है, समुद्र मर्यादा का उल्लंघन कर सकता है, लेकिन प्रियतम! तीन काल में भी मेरा शील भंग नहीं हो सकता।"

यह कहकर शीलवती ने अपने पति को पुष्पों की एक माला समर्पित की और कहा कि मेरे शील के प्रभाव से यह कभी नहीं कुम्हलायेगी।

अजितसेन ने राजा और उसके कर्मचारियों के साथ प्रस्थान किया।

बहुत दूर निकल जाने पर राजा ने देखा कि अजितसेन की माला का एक भी फूल नहीं कुम्हलाया। उसने अजितसेन से पूछा। अजितसेन ने बता दिया।

कामांकुर, ललितांग, रतिकेलि और अशोक नाम के राजा के चार परम मित्र थे। जब अजितसेन की माला की बात राजा ने अपने मित्रों से कही तो उन्हे बिलकुल ही विश्वास न हुआ। अशोक ने राजा से कहा— "शीलवती को मै देखूँगा, यह काम आप मुझे सौपिये।"

राजा का आदेश पाकर अशोक नन्दिपुर के लिये रवाना हो गया। शहर में पहुँचकर शीलवती के घर के पास एक मकान किराये पर लेकर वह रहने लगा।

घर की खिडकी में बैठकर वह मधुर कण्ठ से गीत गाता। गीत सुनकर शीलवती भी उसे अनुरागपूर्ण नेत्रों से निहारती।

एक दिन अशोक ने शीलवती के पास अपनी एक दूती भेजी। दूती ने शीलवती से कहा—"देखो यह जोबन क्षणस्थायी है, फिर तुम्हारा पति परदेश गया हुआ है, तुम क्यों नहीं कामसुख का सेवन कर अपना जनम सफल करतीं ?"

शीलवती ने उत्तर दिया—"कुलवन्ती नारियों के लिये पर पुरुष का संगम अच्छा नहीं है। लेकिन हाँ, यदि वह पुरुष बहुत-सा रुपया देने को तैयार हो तो मैं विचार कर सकती हूँ।"

अशोक रात के समय आधा लाख लेकर आया। शीलवती ने पहले से ही एक गड्ढा खुदवा कर उस पर एक सुन्दर पलंग बिछवा दिया था।

अशोक ने ज्यों ही पलंग पर पैर रखा वह खट्ट से गड्ढे में गिर पड़ा। शीलवती ने एक मिट्टी के सकोरे में डोरी बाँधकर सकोरे को गड्ढे में लटका दिया और अशोक के पास भोजन पहुँचाती रही।

एक महीना बीत जाने पर भी जब अशोक के समाचार न मिले तो राजा बड़ा चिन्तित हुआ।

उसके बाद राजा ने रतिकेलि को भेजा। उसकी भी वही दशा हुई। फिर ललितांग और कामाकुर को रवाना किया, इन्हें भी शीलवती ने अशोक और रतिकेलि के पास गड्ढे में पहुँचा दिया।

चारो को गड्ढे में पड़े-पड़े बहुत दिन बीत गये तो एक दिन उन्होंने शीलवती से प्रार्थना की कि वह किसी प्रकार उनका उद्धार करे। शीलवती ने कहा—"मैं एक शर्त पर तुम्हें निकालने के लिये तैयार हूँ और वह यह कि यदि मैं कहूँ 'ऐसा हो जाये' तो तुम भी यही दुहराना।" उन्होंने कहा—"अच्छा।"

इस समय तक राजा भी अपने कर्मचारियो के साथ वापिस आ गया था। एक दिन अजितसेन ने राजा को अपने घर भोजन के लिए निमन्त्रित किया। शीलवती ने गड्ढे की पूजा करके हुकुम दिया—"हे

यक्षो ! रसोई तैयार हो जाये।" गड्ढे में से आवाज आई—"रसोई तैयार हो जाये।" इसके बाद तुरत ही रसोई तैयार दिखाई दी। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सोचा—"इसे जरूर कोई सिद्धि है जो कहते ही रसोई तैयार हो जाती है।"

राजा ने शीलवती से पूछा। शीलवती ने उत्तर दिया—"महाराज! मुझे चार यक्ष सिद्ध हैं जो मनचाही वस्तु देते हैं।"

राजा ने उन यक्षो को माँगा। शीलवती ने उन्हें राजा के हवाले कर दिया।

उसने उन चारों पर चन्दन का लेप किया, फिर फूलों से उनकी पूजा कर उन्हें एक बोरी में डाल गाड़ी में रखवा दिया। बड़ी धूमधाम से राजा ने अपने महल में प्रवेश किया।

प्रातःकाल होने पर शीलवती की भाँति राजा ने भी उनकी पूजा कर उनसे भोजन-माँगा, लेकिन भोजन तैयार नहीं हुआ। बोरे खोल-कर देखे तो उनमें राजा ने अपने चारो मित्रों को पाया।

●
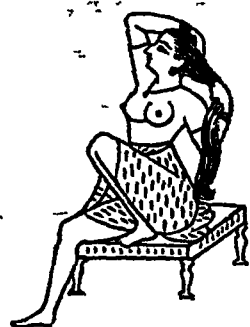
४ : रूपवती तारा

वाराणसी नगरी में पुरन्दर नाम का एक सेठ रहता था। उसके चन्द्र नाम का एक पुत्र था। चन्द्र का विवाह तारा से हुआ था। तारा के पुत्र का नाम था शंखचूड़।

एक दिन चन्द्र ने देखा कि बाजार के चौराहे पर कोई दरिद्र ब्राह्मण सिर पर घास रखकर अपनी लड़की को बेच रहा है। उसने लड़की की कीमत एक लाख दीनार माँगी। चन्द्र को ब्राह्मण के ऊपर दया आ गई। उसने ब्राह्मण को एक लाख दीनार दे दी और लड़की को भी उसी के पास रहने दिया।

चन्द्र के पिता को जब इस बात की खबर लगी तो वह बहुत गुस्सा हुआ। चन्द्र को बुलाकर उसने कहा—"देखो! रुपये की कीमत तुम क्या जानो? तुम्हें नहीं मालूम कि नौ महीने बाद फिर से पुत्र पैदा हो सकता है, लेकिन एक लाख वर्ष में भी तुम लाख दमड़ियाँ नहीं कमा सकते। फिर, क्या तुम कोई राजकुमार हो जो बिना विचारे तुमने

इतना द्रव्य खर्च कर डाला ? तुम नहीं जानते कि धन कमाना कितना मुश्किल है।"

पुरन्दर सेठ ने गुस्सा होकर अपने पुत्र को घर छोड़कर चले जाने का हुकुम दिया।

चन्द्र के साथ उसकी पत्नी तारा और उसका पुत्र शंखचूड़ भी चला।

चलते-चलते तीनों ताम्रलिप्ति नगर में पहुँचे और एक माली के घर रहने लगे। तारा खोटने, पीसने, पानी भरने और रसोई बनाने का काम करने लगी।

एक दिन तारा को एक परिव्राजिका के दर्शन हुए और परिव्राजिका ने उसे एक ऐसी गोली दी जिसके प्रभाव से पुरुष स्त्री और स्त्री पुरुष बन जाय।

तारा नगर के चौराहे पर बैठकर फूल बेचा करती थी। एक दिन राजा की नजर उस पर पड़ी और उसके सौन्दर्य को देखकर राजा उससे हँसी-मजाक करने लगा।

एक दिन की बात है, परिव्राजिका की गोली खाकर पुरुष वेषधारी तारा फूल बेच रही थी। इतने में राजा वहाँ आया और उसे माली समझ उससे कहने लगा—"अरे माली! तेरी मालन कहाँ है? कहीं वह कामज्वर से पीड़ित तो नहीं हो गई?" तारा ने हँसकर उत्तर दिया—"महाराज! कामज्वर की पीड़ा उसे नहीं, आपको मालूम देती है।"

दूसरे दिन राजा फिर से आया। आज तारा अपने असली रूप में थी। राजा मजाक करने लगा। तारा ने उत्तर दिया—"महाराज! आप भूलते हैं, इन तिलों मे तेल की आशा न करें।"

राजा चला गया। रात के समय अपने कर्मचारियों को भेज, उसने

तारा को बुलाया। तारा ने गोली के प्रभाव से अपने पति को स्त्री बना-कर भेज दिया।

राजा स्त्रीरूपधारी चन्द्र की रूपराशि का पान कर पुलकित हो उठा। सेज पर बैठाकर राजा ने उसे पुष्प, तांबूल आदि दिये। फिर अतिशय प्रेम से विह्वल हो कहने लगा—"हे प्रिये ! तेरे विरह की अग्नि से मेरा अंग-अंग झुलस रहा है, अपने संगमसुख से इसे शान्त कर।" यह कहकर राजा ने ज्योंही उसे अपने आलिंगन-पाश में बाँधना चाहा, उसने फौरन ही छिटककर कहा—"महाराज ! यह क्या कर रहे हैं ?" राजा एक पुरुष को अपने सामने खड़ा देख लज्जित हो गया।

चन्द्र ने घर पहुँचकर रात की घटना तारा से सुनाई। तारा ने कहा—"अब इस नगर में रहना ठीक नहीं।"

चन्द्र और तारा अपने पुत्र को साथ लेकर मदन नाम के एक सार्थ-वाह के जहाज में बैठे सिंहलद्वीप के लिये रवाना हो गये।

मार्ग में तारा के रूप को देखकर मदन का मन चंचल हो उठा। इस बीच में गोली खाकर चन्द्र ने तारा का और तारा ने चन्द्र का रूप धारण कर लिया था। मौका पाकर मदन ने पुरुष वेषधारी तारा को समुद्र मे ढकेल कर स्त्री रूपधारी चन्द्र का आलिंगन करना चाहा। इतने में चन्द्र फौरन ही अपने असली रूप में प्रकट हो गया। मदन बड़ा लज्जित हुआ।

कुछ दूर जाकर, दुर्भाग्य से, जहाज फट गया। कितने ही यात्री मर गये और कितने ही बड़ी कठिनाई से किनारे तक पहुँच सके।

उधर तारा भी किसी तख्ते के सहारे किनारे पर लगी। वह किसी भील के हाथ पड़ गई। भील उसे अपनी पल्ली में ले गया और उसे पल्ली के मालिक को सौंप दी। पल्ली के स्वामी ने तारा के रूप पर मोहित हो उसे अपनी पत्नी बनाना चाहा, लेकिन तारा राजी न हुई। उसने कहा—"देखिये, सिंह की जटायें, सती-साध्वियो की जंघायें, शरण

में आये हुए सुभट और सर्प के मस्तक की मणि को बिना जान हथेली पर रखे कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता।"

पल्लीनाथ की जब सब कोशिशें बेकार हुईं तो उसने तारा को सुमति नाम के सेठ के हाथ बेच दिया।

सुमति ने तारा को अपनी पत्नी भद्रा को सौंप दिया और उसे अपनी बेटी के समान रखने को कहा। लेकिन भद्रा के मन में अपने पति की ओर से शंका बनी रही।

एक दिन तारा को अचानक शंखचूड़ दिखाई दिया। इतने दिनों बाद माँ-बेटे मिलकर बड़े खुश हुए। शंखचूड़ ने बताया कि किसी आदमी ने उसे एक चाण्डाल को बेच दिया था और आजकल उसके घर रहता हुआ वह किसी सेठ की गाय चराता है। तारा ने भी जहाज फटने से लेकर आद्योपांत सब वृत्तांत सुनाया।

उस नगर में मणिरथ नाम का राजा राज्य करता था। तारा के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा सुन वह उस पर मुग्ध हो गया। उसने अपने कर्मचारियों को तारा को बुलाने के लिये भेजा।

तारा को बड़ी चिन्ता हुई। इस बीच में शंखचूड़ वहाँ आ गया। उसे अपनी गोद में बैठाकर तारा उसका मुँह चूमने लगी और उसके खप्पर में से खाना उठाकर खाने लगी। राजपुरुषों ने राजा से जाकर कहा कि महाराज! तारा तो चांडाली है। राजा ने सुमति सेठ को डाँटकर कहा—"तेरे घर में चांडाली रहती है और तू लोगों का ईमान बिगाड़ता फिरता है?" सेठ ने उत्तर दिया—"महाराज! मैं उसे घर के बाहर बैठाकर भोजन कराता हूँ।"

सेठ ने घर आकर यह बात तारा से कही। तारा ने उसे सारा वृत्तांत सुना दिया। उसने तारा के पुत्र को दासता से छुड़ाने का वादा किया।

एक बार की बात है, शंखचूड़ को साँप ने डस लिया। उसी समय एक विषवैद्य वहाँ उपस्थित हुआ और उसने अपनी विद्या के प्रभाव से

उसका विष उतार दिया। शंखचूड़ को पता लगा कि विषवैद्य और कोई नहीं बल्कि उसका पिता चन्द्र है तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। तारा भी अपने बिछुड़े हुए पति से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुई।

●

४ : नगरी के न्यायी पुरुष

जयंती नगरी में धनपति नाम का एक सेठ रहता था। धनश्री उसकी भार्या थी। धनश्री के सुंदर नाम का एक पुत्र था। सुंदर जब बड़ा हुआ तो जयसुंदरी से उसका विवाह हो गया।

एक दिन सुन्दर के मन में आया कि परदेश जाकर धन कमाना चाहिये। अपनी माँ से उसने कहा—"अम्मा! जो कायर पुरुष जवानी में धन नहीं कमाता, उसका जन्म बकरे के गले में लगे हुए स्तनों की भाँति निष्फल है। बुद्धिमान पुरुष को अपने बाप-दादाओं की धन-संपत्ति पर अवलंबित नहीं रहना चाहिये। जैसे समुद्र में यदि नदियों का पानी न पहुँचे तो वह भी सूख जाय, इसी तरह यदि धन का उपार्जन न किया जाय तो अक्षय धन की राशि भी समाप्त हो जाय। इसके सिवाय, धनहीन पुरुष चाहे गुणवान् हो या गुणहीन, उसके सगे-संबधी तक पद-पद पर उसका अपमान करने लगते है। जिस पुरुष पर लक्ष्मी

की कृपा होती है, उसके गुणहीन होने पर भी वह गुणी समझा जाता है, कुरूप होने पर भी सुन्दर माना जाता है, निर्बल होने पर भी शूरवीर कहा जाता है और खराब कुल में पैदा होने पर भी कुलीन समझा जाता है। अतएव आप मुझे परदेश जाकर धन कमाने की अनुमति दें।"

सुन्दर की माँ ने उत्तर दिया—"बेटा! तुम यहीं रहकर धन कमाओ। परदेश में भूख, प्यास, अकाल भोजन, रोग-व्याधि, राजा, चोर आदि के दुख सहने पड़ते हैं और धूर्तों के चंगुल से बचे रहना बहुत मुश्किल होता है। बेटा! तुम बहुत सुकुमार हो, बड़े लाड-प्यार से पाले गये हो, इसलिये तुम इन दुखों को सहन करने में समर्थ नहीं हो सकोगे। अतएव परदेश जाकर धन कमाने की इच्छा को मन से निकाल दो।"

लेकिन माँ की बात सुन्दर की समझ में न आई। उसने कहा—"माँ! पुरुषार्थी को ही मनचाही लक्ष्मी प्राप्त होती है। इस तरह संशय करने से तो दुनिया में कोई भी काम नहीं चल सकता।"

माँ ने उत्तर दिया—"बेटा! तू नहीं मानता है तो जा, लेकिन अपनी बहू को मेरे पास छोड़ता जा।"

सुन्दर ने जयसुन्दरी को परदेश-यात्रा के समाचार सुनाये और उसे घर में रहकर शील का पालन करते हुए अपनी सास की सेवा-सुश्रूषा करने का आदेश दिया।

प्रस्थान के पूर्व सुंदर की माँ ने उपदेश दिया—"बेटा! विषयभोगों से और चोरों से सदा अपनी रक्षा करना। जवानी उम्र जंगल के समान बड़ी मुश्किल से पार की जाती है, कहीं ऐसा न हो कि स्त्रियों के पाश में फँस जाओ।"

चलते समय सुंदर ने अपनी माँ को प्रणाम किया और शुभ मुहूर्त में अपने मित्र जिनमुख के साथ कांचनपुर के लिये रवाना हो गया।

सुन्दर ने एक जंगल में प्रवेश किया। वहाँ उसे एक योगी मिला। उसने सुन्दर को गरुड़विद्या प्रदान की। सुन्दर कांचनपुर में पहुँचकर व्यापार करने लगा।

उस समय नगर में बसन्त-उत्सव मनाया जा रहा था। सुन्दर जिन-मुख को लेकर उत्सव देखने गया। वहाँ उसे अपनी सखियों के साथ अशोक वृक्ष की छाया में बैठी हुई कनकसुन्दरी नाम की एक सुन्दर युवती दिखाई दी। कामदेव के बाणों से घायल हो सुन्दर अपना भान खो बैठा।

जिनमुख सुन्दर के मनोभावों को ताड़ गया। उसने सुन्दर की माता के उपदेश की ओर उसका ध्यान दिलाया, लेकिन सुन्दर पर असर न हुआ।

सुन्दर अपने मित्र के साथ नगर में रहने लगा। एक बार की बात है, कनकसुन्दरी को साँप ने डस लिया। अनेक वैद्य बुलाये गये लेकिन कोई उसे अच्छा न कर सका। उसके पिता कनकसार सेठ ने नगर में डोंडी पिटवाई कि जो कोई उसकी कन्या का विष उतार देगा उसे एक लाख दीनार इनाम में दी जायँगी।

सुन्दर ने डोंडी रुकवा दी। वह कनकसार सेठ के घर पहुँचा। एक मण्डल बनाकर उसने उसके ऊपर कनकसुन्दरी को बैठाया और फिर मन्त्र पाठ किया। फौरन ही कनकसुन्दरी आँख खोलकर उठ बैठी। कनकसार अपनी कन्या को जीवित देखकर परम प्रसन्न हुआ।

कनकसार ने सुन्दर के साथ अपनी कन्या का विवाह कर देने की इच्छा व्यक्त की, लेकिन इसके लिये सुन्दर ने अपनी माँ की अनुमति चाही।

कनकसार ने फौरन ही धनश्री के नाम पत्र लिखा। पत्र पढ़कर धनश्री प्रसन्न हुई और जयसुन्दरी से पूछकर उसने विवाह के लिये अनु-मति भेज दी।

बड़ी धूमधाम से सुन्दर और कनकसुन्दरी का विवाह हो गया। अपनी नवविवाहिता वधू के साथ सुन्दर ने स्वदेश लौट जाना चाहा लेकिन वर्षा ऋतु आरम्भ हो जाने से कुछ दिन वह वहीं ठहरा रहा।

इस बीच मे जयन्ती नगरी से व्यापारियों का एक काफला वहाँ आया। उसमें दामोदर नाम का एक ब्राह्मण भी था। सुन्दर ने उसके हाथ धनश्री के पास सात रत्न भेजे। लेकिन जयन्ती पहुँचकर दामोदर के मन मे लोभ आ गया और उसने रत्नों को अपने ही पास रख लिया।

सुन्दर ने एक अन्य व्यापारी के हाथ अपनी माँ को पत्र भेजा था जिसमे रत्नो के भेजने का उल्लेख था। इस व्यापारी ने जयन्ती पहुँचकर यह पत्र धनश्री को दिया तो रत्नों के न मिलने से उसे बड़ी चिन्ता हुई। दामोदर से उसने रत्न माँगे, लेकिन दामोदर नट गया और उसने कहा कि किसी ने झूठा पत्र धनश्री को लिख दिया होगा।

धनश्री ने जयसुंदरी से कहा—"बहू!" मालूम होता है इस ब्राह्मण के मन मे पाप समा गया है, इसलिये अच्छा हो यदि हम नगर के प्रधान के पास चलें।"

अगले दिन भोजन आदि से निबटकर जयसुन्दरी नगरसेठ के घर गई और उससे सारा हाल कह सुनाया। नगरसेठ ने कहा—"मैं तुम्हारी मदद करूँगा, लेकिन एक रात के लिए तुम्हें मेरे साथ रहना होगा।" जयसुंदरी ने स्वीकृति दे दी और उसे रात्रि के पहले पहर में घर आने को कहा।

फिर वह नगर के पुरोहित के पास गई। पुरोहित ने भी वैसा ही प्रस्ताव रखा। जयसुंदरी ने उसे रात्रि के दूसरे पहर में बुलाया।

वह राजमन्त्री के पास गई। उसने भी वही बात कही। उसे रात्रि के तीसरे पहर में बुलाया।

अन्त में वह राजा के पास गई। राजा ने भी वही प्रस्ताव रखा। राजा को उसने चौथे पहर में बुलाया।

घर लौटकर जयसुन्दरी ने सारी बातें अपनी सास को सुनाईं। वह कहने लगी—"जिस नगर के न्यायी पुरुष ही ऐसे हैं, वहाँ फिर रत्नों के पाने की आशा ही व्यर्थ है।"

लेकिन जयसुन्दरी ने साहस से काम लिया। उसने चार कोनोंवाला एक बड़ा संदूक बनवाया और अपने घर को खूब अच्छी तरह सजाया।

रात हो जाने पर पहले पहर में सबसे पहले नगरसेठ ने घर में प्रवेश किया। जयसुन्दरी ने उसके पैर धोकर उसका स्वागत किया। फिर शृंगार-कथा होने लगी। इतने में पुरोहित ने दरवाजा खटखटाया। जयसुन्दरी ने पूछा—"यह कौन है?" नगरसेठ ने उत्तर दिया—"आवाज से पुरोहित जी जैसे लगते हैं।" पुरोहित को आया जान नगरसेठ ने कोई छिपने की जगह पूछी। जयसुन्दरी ने सन्दूक खोलकर उसके एक कोने में छिप जाने का इशारा किया। नगरसेठ छिप गया।

उसके बाद जयसुन्दरी ने दरवाजा खोलकर पुरोहित को अन्दर बुला लिया। उसे उच्च आसन पर बैठाकर उसका सत्कार किया। फिर शृंगार-कथा शुरू हुई। इतने में मन्त्री ने दरवाजे पर दस्तक दी। पुरोहित ने कहा—"राजमन्त्री की आवाज मालूम देती है।" पुरोहित ने छिपने की जगह पूछी। जयसुन्दरी ने संदूक के दूसरे कोने की ओर इशारा कर दिया।

मन्त्री का भी यथोचित आदर-सत्कार किया गया। इतने में राजा ने आकर दरवाजा खटखटाया। पूछने पर मन्त्री ने उत्तर दिया—"आवाज तो राजा जैसी मालूम होती है।" मन्त्री ने छिपने की जगह पूछी तो जयसुन्दरी ने उसे सन्दूक के तीसरे कोने में छिपा दिया।

जयसुन्दरी ने राजा का भी खूब आदर-सत्कार किया। इतने में जयसुन्दरी की सास ने आकर दरवाजा खटखटाया। राजा ने पूछा—"यह कौन है?" जयसुन्दरी ने उत्तर दिया—"सासजी होंगी।" राजा ने

छिपने की जगह पूछी। जयसुन्दरी ने सन्दूक के चौथे कोने में उसे छिपा दिया और बाहर से ताला बन्द कर दिया।

सुबह होने पर धनश्री अपनी बहू को गले से लगाकर रोने लगी। अड़ोस-पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गये। नगर का कोतवाल भी आ गया। उसे लक्ष्य कर धनश्री ने कहा—"देखिये, मेरे एक ही तो पुत्र था और वह भी परदेश में चल बसा।"

यह सुनकर कोतवाल राजकुल में पहुँचा। देखा तो वहाँ राजा नदारद था। वहाँ से मन्त्री के घर गया। पता लगा मन्त्री भी नहीं है। फिर पुरोहित के घर गया, मालूम हुआ वह भी घर में नहीं है। नगर-सेठ के घर जाने पर पता लगा कि वह भी लापता है।

उसके बाद कोतवाल पंचायत के पास पहुँचा। कोतवाल के कहने से पंचलोग धनश्री के घर आये। उसके माल-असबाब को देखकर उन्होंने प्रश्न किया—"तुम्हारे घर में तो काफी संपत्ति होनी चाहिये, लेकिन कहीं दिखाई नहीं देती?" धनश्री ने उत्तर दिया—"ज्यादा तो मैं नहीं जानती, परदेश जाते समय मेरे बेटे ने इस सन्दूक को सँभाल कर रखने को जरूर कहा था।

पंचों ने सोचा, अवश्य ही इस सन्दूक में धन होना चाहिये। धनश्री ने सन्दूक को सरकाने की कोशिश की, लेकिन वह उसे जरा भी न हिला सकी। उन लोगों ने जयसुन्दरी से इसका कारण पूछा। उसने उत्तर दिया—"देखिये, पंचो! आज रात को मैंने स्वप्न देखा है कि मेरे घर में चार लोकपाल आये और वे इस सन्दूक के चारों कोनों में बैठ गये। यदि यह स्वप्न सच्चा है तो इन्हीं लोकपालों के कारण यह सन्दूक भारी मालूम दे रहा है।"

राजपुरुषों ने सन्दूक को एक गाड़ी पर रखवा दिया और उसे राजकुल में ले आये। पंचों के सामने उसका ताला खोला गया। पूर्व की ओर से राजा, दक्षिण की ओर से मन्त्री, पश्चिम की ओर से पुरोहित

और उत्तर की ओर से जब नगरसेठ को निकलते देखा तो पंचों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

पंचों ने पूछा—"क्या सचमुच इस सन्दूक में से राजा, मन्त्री, पुरोहित और नगरसेठ निकले हैं या यह कोई इन्द्रजाल था?" जयसुन्दरी ने उत्तर दिया—"मैं पहले ही अपने स्वप्न के बारे मे कह चुकी हूँ, जान पड़ता है मेरा स्वप्न सच्चा हो गया।"

पंचो ने सोचा—"अपनी ही पोल खोलने से क्या लाभ?" उन्होंने संदूक को चुपके से जयसुन्दरी के घर भेजवा दिया।

इस समय एकान्त पाकर राजा ने कोतवाल से कहा—"कोतवाल जी! जयसुन्दरी से कहो कि उसके रत्न मिल जायेंगे, लेकिन इस घटना को वह किसी से न कहे।"

●

५ : पत्नी का जोड़ा

वाराणसी में धर्षण नाम का एक राजा रहता था। उग्रसेन उसका मन्त्री था। मन्त्री की भार्या का नाम सुभद्रा था। उसके कडारपिंग नाम का एक पुत्र था। राजा का एक पुरोहित था। पद्मा उसकी भार्या थी।

कडारपिंग जब बड़ा हुआ तो अपने धन और यौवन से उन्मत्त हुआ वह अपने दोस्तों के साथ नगर की गलियों में चक्कर लगाया करता था।

एक दिन की बात है, छैल-छबीला बना वह रास्ते से जा रहा था कि उसे पुरोहित की पत्नी पद्मा दिखाई दी, और उसके रूप-लावण्य को देखकर वह मुग्ध हो गया।

उसी नगर में तडिल्लता नाम की एक कुशल कुट्टिनी रहती थी। वह स्त्री-स्वभाव को भलीभाँति समझती था; तथा आकर्षण, मारण उच्चा-

टन आदि द्वारा दूसरे को वश में करना जानती थी। कडारपिंग ने उसके घर पहुँचकर उसे प्रसन्न किया और किसी तरह पद्मा से मिला देने की प्रार्थना की।

तडिल्लता ने सोचा कि कार्य तो यह मुश्किल है, लेकिन दो रसभरे हृदयो का मिलन करा देने से मनुष्य की प्रतिभा का पता चलता है।

इस सम्बन्ध मे कदम उठाने से पहले कडारपिंग के पिता मन्त्री उग्रसेन की अनुमति प्राप्त कर लेना उसने उचित समझा। उग्रसेन के पास जाकर उसने सब बातें कहीं। कुट्टिनी को प्रोत्साहित करते हुए मन्त्री ने कहा—"आर्यें! मेरे पुत्र के इस मनोरथ को पूर्ण करने के लिये तुम्हारे सिवाय और कौन समर्थ है?"

तडिल्लता ने कात्यायनी की मूर्ति धारण की और पद्मा के घर की ओर चल दी। वहाँ पहुँचकर उसने एक सुभाषित पढ़ा—"जैसे गंगा मणियो की माला की भाँति महादेव के द्वारा मस्तक पर धारण की जाती है, वैसे ही जो स्त्रियाँ दूसरे के द्वारा सम्भोग प्राप्त करती हैं वे धन्य है।"

सुभाषित सुनकर पद्मा सोचने लगी—"निश्चय ही यह कुलटाओं के आचरण के सूत्रपात की ओर इशारा है।" उसने कुट्टिनी से श्लोक का अर्थ पूछा। कुट्टिनी ने उत्तर दिया—"यदि तेरा हृदय कठोर नहीं तो तू अवश्य ही इस सुभाषित का अर्थ समझ सकती है।"

पद्मा ने मन में सोचा—"कठोर तो मैं अवश्य हूँ, लेकिन कहीं इसके हथौड़े की चोट से मै जर्जरित न हो जाऊँ।" उसने कहा—"आर्यें! मै इस सुभाषित का अर्थ समझना चाहती हूँ।"

कुट्टिनी ने कहा—"सुनो।"

ज्ञानी और धन-धान्य से समृद्ध मनुष्य के द्वारा केवल दो व्यक्तियों के समक्ष अपने मन की बात कहनी चाहिये—एक तो वह प्रार्थना करने पर निराश नहीं करता, दूसरा वह जो मन के अनुकूल बन जाता है।"

सुभाषित का अर्थ सुनकर पद्मा सोचने लगी—"अरे! यह तो आकाश के समान स्वच्छ व्यक्ति पर भी कीचड़ लपेटना चाहती है!" लेकिन प्रकट रूप में उसने कहा—"आर्ये! मैं तो दोनो तरह समर्थ हूँ।"

कुट्टिनी मन में सोचने लगी—"इसका कथन सर्वथा अनुकूल है।" उसने पुराणों के दृष्टान्त सुनाये।

पद्मा ने कहा—"आप ठीक कहती हैं। किसी ने कहा है—

स्त्रियों का शरीर (मन नहीं) अग्नि की साक्षी से उसके सगे-सम्बन्धियों द्वारा दूसरे के हाथ बेच दिया जाता है, और वही स्त्री का अधिपति माना जाता है जो उसे विश्वासपूर्वक सन्तोष प्रदान करता है।"

कुट्टिनी ने कहा—"यदि ऐसी बात है तो सुन—एक बार तू अपने प्रासाद पर विहार कर रही थी कि चन्द्रमा की ज्योत्स्ना के समान तेरे लावण्य को देखकर मन्त्री का पुत्र कडारपिंग व्याकुल हो उठा। तभी से उसका मन उद्विग्न है। उसकी मनोदशा ऐसी हो गई है मानो किसी पिशाच ने उसे ठग लिया हो। बेटी! तेरे विरह में वह दिन-दिन कृश होता जाता है।"

पद्मा—आर्ये! भला यह भी कोई छिपाने की बात है?

कुट्टिनी—तुम ठीक ही कहती हो।

पद्मा—इसमें क्या दोष है?

कुट्टिनी—तो फिर कब?

पद्मा—जब तुम कहो।

इधर कुशल मन्त्री ने राजा के पुरोहित को बाहर भेजने के लिये एक युक्ति सोची। एक दिन उसने राजा से कहा—"महाराज! जिसके घर किंजल्प पक्षी होता है, उसके राज्य की वृद्धि होती है और उसके शत्रु नष्ट हो जाते हैं, इसलिये आप क्यों उस पक्षी को न मँगवा लें।"

राजा—वह पक्षी कहाँ मिलता है?

मन्त्री—रत्नशिखण्ड नाम के पर्वत की चोटी पर एक गुफा है, वहीं पर वह पक्षी मिल सकता है। आप कहें तो पुरोहित जी को साथ लेकर मै वहाँ चला जाऊँ।

राजा—आप तो बहुत बूढ़े हैं, क्यो न पुरोहित जी अकेले जाकर उसे ले आये।

पुरोहित को रत्नशिखण्ड पर्वत पर जाकर किंजल्प पक्षी को लाने का आदेश मिल गया।

घर आकर पुरोहित ने यह बात पद्मा से कही। पद्मा ने कहा—"स्वामिन्! इसमें जरूर कुछ मन्त्री का कपटजाल मालूम होता है। खैर, आप चिन्ता न करे। आप दिन में सबके सामने बाहर जाने का बहाना कर रात्रि के समय घर लौट आयें। बाकी मैं देख लूँगी।"

कुछ समय बाद रात्रि के समय कुट्टिनी ने कडारपिंग के साथ पद्मा के घर में प्रवेश किया।

इधर पद्मा ने पहले से ही एक बड़ा-सा गड्ढा खोदकर उसके ऊपर खाट बिछा दी थी। जब कुट्टिनी और कडारपिंग खाट पर बैठे तो धम्म से गड्ढे में गिर पड़े।

उन्हें जीवित रखने के लिये पद्मा अपने घर की जूठन कूठन खाने को देती रही।

कुछ दिन बाद पद्मा ने घोषणा की कि उसका पति किंजल्प के एक सुन्दर जोड़े को लेकर शीघ्र ही लौटनेवाला है।

उसने कडारपिंग और कुट्टिनी के शरीर को विविध रंगों से रँगवाकर अनेक पक्षियो के पंख उनके शरीर में चिपका दिये, और उन्हें एक बड़े पिंजड़े में बन्द कर दिया।

इस पिंजड़े को रात के समय उसने एक जंगल में भेजवा दिया और लोगो से कह दिया कि उसका पति अपनी लंबी यात्रा से लौटकर आ रहा है।

पद्मा अपनी सखियों के साथ प्रवास से लौटकर आते हुए अपने पति से मिलने चली।

पुरोहित वापस लौटकर अपनी पत्नी को साथ ले राजदरबार में पहुँचा। पिंजड़े को राजा के सामने रखकर उसने निवेदन किया—"महाराज ! यह देखिये, यह नर किंजल्प है और यह इसको जन्म देने-वाली मादा किंजल्प है।"

राजा ने दोनों की परीक्षा करके कहा—"पुरोहित जी ! यह आप क्या कह रहे हैं ? यह तो पुरुष-स्त्री जान पड़ते हैं।"

पुरोहित—इसका भेद तो मंत्री महोदय ही बता सकते हैं।

राजा ने मंत्री को बुलाया। मंत्री लज्जा से सिर झुकाकर नीचे की ओर देखने लगा।

राजा ने पद्मा की बुद्धिमानी की बहुत प्रशंसा की और बड़े ठाठ से कर्णीरथ पर चढ़ाकर उसे उसके घर भेज दिया।

●

६ : राजा विक्रम और सुन्दरी

प्राचीन काल मे रत्नपुर नाम का एक सुन्दर नगर था। अरिदमन नाम का राजा वहाँ राज्य करता था।

इसी नगर में धनसार नाम का एक सेठ रहता था। प्रेमवती उसकी पत्नी थी।

प्रेमवती के सात पुत्र थे, लेकिन फिर भी वह उदास रहती थी। एक दिन धनसार ने पूछा—"प्रियतमे ! क्या मेरे रहते हुए किसी ने तेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है ? या मुझसे अनजान मे कोई अपराध हो गया है जो तू उदास रहती है ?" प्रेमवती ने उत्तर दिया—"प्राणनाथ !

ऐसा बोल मत बोलिये। क्या कभी चन्द्रमा भी आग के कण उगल सकता है?" धनसार ने कहा—"तो फिर उदासी का क्या कारण है?" प्रेमवती ने उत्तर दिया—"प्रियतम! मुझे दुख है कि कन्या के जन्म से मैं वंचित ही रही।"

धनसार ने कुलदेवी की आराधना की। कुलदेवी ने साक्षात् उपस्थित होकर धनसार को वर दिया जिससे सेठानी के कन्या का जन्म हुआ। उसका नाम सुन्दरी रखा गया।

सुन्दरी चन्द्रकला की भाँति दिन पर दिन बड़ी होने लगी। बड़े परिश्रम से उसने व्याकरण, तर्क, छंद, अलंकार, काव्य, नाट्य, गीत और चित्रविद्या में निपुणता प्राप्त की।

एक बार की बात है, सुन्दरी ने उज्जैनी के विक्रमराज का चरित सुना और वह उसके प्रेमपाश में फँस गई। उसने निश्चय किया कि यदि वरण करूँगी तो राजा विक्रम को, नहीं तो आग में जलकर प्राण गँवा दूँगी।

इधर धनसार ने सिंहलद्वीप के निवाणग नाम के एक सेठ के लड़के के साथ सुन्दरी की सगाई पक्की कर दी। इस सम्बन्ध से सुन्दरी मन ही मन कुढ़ती, लेकिन अपने पिता के विरुद्ध कुछ न बोल सकती।

वचनसार सुन्दरी का बड़ा भाई था। एक बार व्यापार के लिये वह उज्जैनी जा रहा था। सुन्दरी ने कहा—"भैया! मेरे पास चमड़े का एक सुन्दर तोता है, जब तुम उज्जैनी के राजा विक्रम के दरबार में भेंट लेकर जाओ तो मेरी ओर से उन्हें यह तोता दे देना।"

वचनसार उज्जैनी के लिये रवाना हो गया। राजभवन में पहुँचकर उसने सुन्दर रत्नों से एक थाल भरा और उसमें तोते को रखकर राजा को समर्पित कर दिया।

अब तक लोग प्रायः रत्न और मणि-मुक्ता आदि की ही भेंट राजा को देते थे, इसलिये कुतूहल उत्पन्न करनेवाले सुन्दर तोते को देखकर

राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने तोते के सम्बन्ध में वचनसार से पूछा। वचनसार ने बताया कि वह उसकी बहन सुन्दरी का भेजा हुआ प्रेम उपहार है।

यह सुनकर राजा और प्रसन्न हुआ। राजा के दरबार में उस समय एक ज्योतिषी उपस्थित था। उसने बताया—"महाराज! यह तोता आपके भाग्य का सूचक है।" फिर राजा को एकान्त में ले जाकर उसने कहा—"राजन्! आप इसका पेट फाड़कर देखें।"

तोते का पेट फाड़कर देखा तो उसमें से एक सुन्दर हार निकला, और कस्तूरी से लिखा हुआ एक प्रेमपत्र। पत्र में लिखा था—

"हे सुभगशिरोमणि विक्रम! आपके गुणों का मैं सदैव चिन्तन करती रहती हूँ। ऐसी कौन-सी शुभ घड़ी होगी जब आपके दर्शन से मेरे नेत्र पवित्र होंगे। मेरे माता-पिता ने निवाणग नाम के एक सेठ के लड़के से मेरी सगाई कर दी है और वैशाख बदी द्वादशी के दिन उसके साथ मेरा विवाह हो जायगा। हे नाथ! मैंने प्रण किया है कि आपके सिवाय और कोई मेरे शरीर का स्पर्श नहीं कर सकता। ईश्वर न करे, यदि ऐसा हुआ तो अग्नि में जलकर मैं अपने प्राण त्याग दूँगी। अब आप जैसा उचित समझें करें।"

पत्र पढ़कर राजा का मन हर्ष और विषाद से भर गया। वह सोचने लगा—"वह बिचारी मेरे विरह में कैसे जीती होगी?"

राजा विक्रम ने समुद्र के रास्ते से रत्नपुर जाने का निश्चय किया। उसने अपने भृत्य अग्निवेताल का स्मरण किया, लेकिन उसने समुद्र मार्ग से जाने में असमर्थता प्रकट की।

फिर भी राजा ने हिम्मत न हारी। रात्रि के समय वेष बदलकर अपने धवलगृह को छोड़ वह अकेला ही रत्नपुर के लिये चल पड़ा।

चलता-चलता वह एक जगल में पहुँचा। जब उसे भूख लगी तो किसी आदमी ने उसे खाने के लिये कचरियाँ दीं। राजा ने उससे रत्नपुर

का रास्ता पूछा। उसने बताया कि यहाँ एक बड़ का वृक्ष है, वहाँ जोगिनियाँ आती हैं और बड़ के ऊपर बैठकर वे रत्नपुर पहुँच जाती हैं।

राजा बड़ के वृक्ष पर चढ़ा और साँस रोककर उसके खोखल में छिपकर बैठ गया। थोड़ी देर में वहाँ जोगिनियाँ एकत्रित हुईं और वह वृक्ष हवा मे उड़ने लगा राजा को रत्नपुर पहुँचते देर न लगी।

रात्रि के समय जब राजा रत्नपुर पहुँचा तो वहाँ सब जगह हर्ष और उत्साह छाया हुआ था। रत्नों से निर्मित देवकुलों की पंक्ति दिखाई दे रही थी जिससे अंधकार का लवलेश भी नजर न आता था। गायक गण मनोहर गान गा रहे थे, मंदिरो में सुन्दर नाटक दिखाये जा रहे थे और घर-घर धूमधाम से महोत्सव मनाये जा रहे थे।

राजा के मन में सुन्दरी को प्राप्त करने का विचार हिलोरें मार रहा था। पूछने पर पता चला कि धनसार नाम के सेठ की कन्या सुन्दरी का कल गोधूलिवेला में पाणिग्रहण होनेवाला है; उसी की यह तैयारी है।

राजा ने सोचा, तो क्या उसका इतनी दूर से आना निष्फल ही जायेगा! फिर भी उसने धीरज न छोड़ा।

राजा रातभर नगर का चक्कर लगाता रहा।

संयोग की बात, खबर मिली कि राजवल्लभ नामका राजा का हाथी बीमार है, और निश्चेष्ट होकर वह मृतक के समान पड़ा है। अरिदमन को बड़ी चिन्ता हुई। हस्तिवैद्य बुलवाये गये। हाथी की परीक्षा करने के बाद वैद्यो ने बताया—"महाराज! नींद न आने के कारण इसका पेट अफर गया है। कचरी के साथ खट्टी छाछ देने से यह ठीक हो जायगा।"

नगर में कचरी की तलाश की गई तो कचरी कहीं नहीं मिली। राजा ने धनसार को बुलाकर उसे कचरी लाने का आदेश दिया।

लेकिन कंचरी कहीं नहीं मिली। धनसार ने नगरभर में डोडी पिटवा दी कि जो कोई कचरी लाकर देगा उसे मनचाहा पुरस्कार दिया जायगा।

राजा विक्रम ने डोडी रुकवा कर धनसार को कचरी दे दी। यह कचरी छाछ के साथ हाथी को खिलाई गई जिससे हाथी को विरेचन हुआ और वह बिलकुल अच्छा हो गया।

पुरस्कार में विक्रम ने सुन्दरी की माँग की। धनसार ने सोचा कि इसे तो मैं निवाणग को दे चुका हूँ! लेकिन अरिदमन ने कहा कि सुन्दरी कचरी लानेवाले आगन्तुक को मिलनी चाहिये।

संध्या के समय पाणिग्रहण-वेला में आगन्तुक और निवाणग दोनों उपस्थित हुए। निवाणग सुन्दरी को न पाने के कारण झगड़ा करने लगा। उसने कहा—"जब सुन्दरी मुझे दी जा चुकी है तो अब दूसरे को कैसे दी जा सकती है?"

खैर, किसी तरह बीच-बिचाव किया गया और आगन्तुक के साथ सुन्दरी का विवाह हो गया।

आगन्तुक ने सुन्दरी के साथ रात्रि व्यतीत की। राजा विक्रम वास-भवन में मणिमय सिंहासन पर बैठा था कि अचानक ही सुन्दरी को छोड़ वह वहाँ से चल दिया। वह बड़ के वृक्ष पर पहुँचा और जैसे आया था वैसे ही जोगिनियों के साथ उज्जैनी लौट गया।

अपने प्राणप्रिय को न देख सुन्दरी विलाप करने लगी। फिर गले में फंदा डाल उसने मरने का निश्चय कर लिया। फंदा गले में लगाने से पहले उसने विचार किया—"विक्रम राज को छोड़कर मैंने किसी अन्य पुरुष का ध्यान तक नहीं किया, इसलिये दूसरे जन्म में भी मैं उसे ही पति के रूप में पाऊँ।" इसके बाद जैसे ही उसने गले में फाँसी लगाया कि उसे अपने आँचल पर पान की पीक से लिखे हुए निम्नलिखित शब्द दिखाई दिये—

"तुम्हारा पत्र पाकर उज्जैनी का विक्रमराज एक आगन्तुक के वेष में यहाँ आया था, और तुम्हारे साथ विवाह करके वह वापस लौट गया है।"

उपर्युक्त शब्द पढ़कर हर्ष और प्रेम से विह्वल हो सुन्दरी ने अपने आँचल की ओर नजर डाली। उसका शरीर रोमांचित हो उठा।

सुबह होने पर धनसार ने आन्तुक को वहाँ न देख सुन्दरी से पूछा। अपने आँचल की ओर देखकर उसने लज्जा से सिर झुका लिया।

राजा अरिदमन ने अपने दलबल के साथ सुन्दरी को उज्जैनी भेज दिया। वहाँ बड़ी धूमधाम से उसका स्वागत हुआ, और वह विक्रमराज की रानी बनकर रहने लगी।
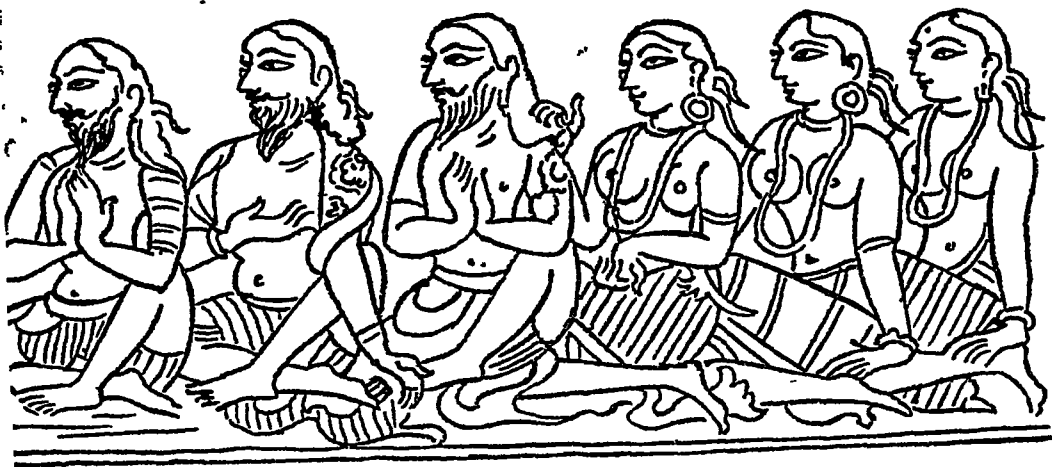
दूसरा भाग

७ : कुमुदिका के हृदय की थाह

प्रतिष्ठान नगर में विक्रमसिंह नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम शशिलेखा था।

एक बार की बात है, सामंती राजाओं ने मिलकर प्रतिष्ठान को घेर लिया। विक्रमसिंह ने साम, दाम, दंड और भेद का प्रयोग किया लेकिन कोई नतीजा न हुआ। आखिर विक्रमसिंह को युद्ध के लिये बाध्य होना पड़ा।

दोनों सेनाये युद्ध के लिये सज्जित हो गईं। विक्रमसिंह हाथी पर चढ़कर युद्ध करने लगा। उनकी सेनायें शत्रु-सेनाओं से कम थीं, इसलिये जब वे मैदान छोड़कर भागने लगीं तो मंत्री की सलाह से राजा ने युद्ध बंद कर दिया।

राजा और मंत्री अपना वेष बदल घोड़े पर सवार होकर भाग गये। वे उज्जैनी पहुँचे।

उज्जैनी में कुमुदिका नाम की वेश्या रहती थी। दोनों ने उसके घर में प्रवेश किया।

विक्रमसिंह के असाधारण लक्षणों को देखकर कुमुदिका समझ गई कि वह कोई महाराजा होना चाहिये। कुमुदिका ने राजा का स्वागत किया तथा अपने हाथी, घोड़े और माल-खजाना उसके हवाले कर दिया।

राजा विक्रमसिंह अपने मंत्री के साथ कुमुदिका के घर रहता हुआ उसके धन का यथेच्छ उपभोग करने लगा।

कुमुदिका राजा के प्रति अपना अतिशय प्रेम प्रदर्शित करने लगी। राजा ने यह बात अपने मंत्री से कही। लेकिन मंत्री ने उत्तर दिया—"वेश्याओं का प्रेम कभी सच्चा नहीं होता। इसमें जरूर उसका कोई स्वार्थ होगा।" लेकिन राजा ने कहा—"ऐसा कभी नहीं हो सकता, कुमुदिका मेरे लिये प्राण तक दे सकती है।" मंत्री ने उत्तर दिया—"महाराज! यह बात नहीं है। मौका आने दीजिये, मैं अपने कथन को सच्चा करके दिखा दूँगा।"

राजा ने कुमुदिका की परीक्षा ली। उसने अपना खाना-पीना कम कर दिया। कुछ दिन बाद ऐसा लगने लगा कि राजा अब बहुत दिन तक जिन्दा न रहेगा।

एक दिन राजा सचमुच मृतक के समान हो गया। लोगों ने समझा कि उसकी मृत्यु हो गई है, इसलिये एक पालकी में रखकर उसे श्मशान ले गये।

राजा की मृत्यु सुनकर कुमुदिका बड़ी दुखी हुई। अपने सगे-सम्बन्धियों के बहुत मना करने पर भी वह राजा की चिता पर बैठ गई। लेकिन चिता में आग लगने से पहले ही राजा उठ बैठा। यह देखकर

सब लोग बड़े प्रसन्न हुए। कुमुदिका भी प्रसन्न होकर अपने घर लौट गई।

राजा ने मन्त्री से कहा—"देखा, कुमुदिका मुझे कितना चाहती है?" लेकिन मन्त्री ने वही उत्तर दिया कि मुझे उसके प्रेम का विश्वास नहीं होता, जरूर इसमें कोई भेद है।

एक दिन मन्त्री ने राजा से कहा—"महाराज! हम लोगों को अब अपना असली रूप प्रकट कर देना चाहिये जिससे हम लोग सेना लेकर फिर से शत्रु के साथ युद्ध कर सकें।

प्रतिष्ठान का हाल जानने के लिये वहाँ एक गुप्तचर भेजा गया। गुप्तचर ने लौटकर समाचार दिया—"महाराज! सारे देश को शत्रुओं ने आक्रांत कर रखा है। राजा को विपद्ग्रस्त जानकर महारानी अग्नि मे प्रवेश कर गई है।"

राजा को बहुत दुख हुआ। महारानी की मृत्यु के समाचार सुनकर उसे बहुत धक्का लगा।

कुमुदिका ने राजा को ढाढ़स बँधाते हुए कहा—"महाराज! मेरा सारा धन आपका है, इसे आप अपनी सेना के संगठन मे खर्च करें।"

राजा ने कुमुदिका के धन से सेना संगठित की और शत्रु को परास्त कर अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त किया।

कुमुदिका राजा के साथ रहने लगी। एक दिन राजा ने कुमुदिका से कहा—"मै तुम्हारी सचाई और ईमानदारी से बहुत प्रसन्न हूँ, बोलो, क्या चाहती हो?"

कुमुदिका ने उत्तर दिया—"महाराज! बहुत दिनो से एक बात मेरे मन मे काँटे की तरह चुभ रही है, जो आज तक मैंने आपसे नहीं कही।"

राजा—वह कौन-सी बात है?

कुमुदिका—देखिये, उज्जैनी में श्रीधर नाम का एक ब्राह्मण रहता है, वह मेरा प्रेमी है। किसी साधारण से अपराध पर राजा ने गिरफ्तार कर लिया है। आप उसे छुड़वा दें।

राजा ने कुमुदिका के प्रेमी को छुड़वा दिया।

राजा सोचने लगा—"सचमुच वेश्याओं का हृदय अगाध है, उसकी थाह पाना कठिन है!"

●

८ : देवदत्ता और मूलदेव

पाटलिपुत्र नगर में मूलदेव नाम का एक राजकुमार रहता था। वह द्यूत आदि समस्त कलाओं में कुशल, ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न, उदारमन, गुणानुरागी, प्रियभाषी और अत्यन्त रूपवान् था।

एक बार घूमता-घूमता वह उज्जैनी पहुँचा और गुटिका के प्रयोग से अपना वेश बदल एक बौने के रूप में रहने लगा। कथा-कहानियों, सगीत और अनेक हास्य-विनोद द्वारा नगरवासियो के मन को वह आनन्दित करने लगा।

इसी नगरी में रूप और लावण्य की खान तथा चौंसठ कलाओं में कुशल देवदत्ता नाम की एक प्रसिद्ध गणिका रहती थी।

मूलदेव को पता लगा कि यह गणिका बड़ी गर्वीली है और किसी सामान्य पुरुष के वश में नहीं आती। एक दिन सुबह के समय देवदत्ता के घर के पास पहुँचकर मूलदेव ने अपना मनोहर संगीत शुरू कर

दिया जिसे सुनकर वह पागल बन गई। देवदत्ता ने माधवी नाम की अपनी चतुर दासी को भेजकर उसे घर आने के लिये आमन्त्रित किया। लेकिन मूलदेव ने कहा कि सज्जन पुरुष वेश्याओं से दूर ही रहते हैं। कहा भी है—

"विचित्र विटों के वश में रहनेवाली, मद्यपान और मांसभक्षण में आसक्त, अति निकृष्ट तथा वचनों में कोमल और मन से दुष्ट ऐसी गणिका का विशिष्ट पुरुष कभी सेवन नहीं करते। अग्नि की शिखा की भाँति वह सन्ताप देती है, मदिरा की भाँति मन को मोहित करती है, छुरी की भाँति शरीर को काटती है और सोंक की भाँति वह निन्दनीय है।"

लेकिन माधवी भी कुछ कच्ची गोली न खेली थी। उसने अनेक उक्तियों द्वारा मूलदेव को प्रसन्न किया और उसे वह घर ले आई।

मूलदेव के रूप-लावण्य को देखकर देवदत्ता बड़ी चकित हुई। भोजन, पान आदि से उसने मूलदेव का सत्कार किया। फिर पाण्डित्यपूर्ण उक्तियों-प्रत्युक्तियों से दोनों में वार्तालाप होने लगा।

इस समय वहाँ एक वीणा बजानेवाला आया। उसकी वीणा सुनकर देवदत्ता बड़ी प्रभावित हुई। लेकिन मूलदेव ने वीणा के बाँस को ही दोषपूर्ण बताया। उसने वीणा के अन्दर से एक बारीक बाल निकालकर उसे बजाना शुरू किया जिसे सुनकर पास में बँधी हुई हथिनी भी उन्मत्त हो उठी।

स्नान करने के पहले देवदत्ता ने अंगमर्दक को बुलाने का आदेश दिया। लेकिन मूलदेव ने उत्तर दिया कि उसकी जरूरत नहीं, वह इस कर्म को जानता है। उसने चम्पा के तेल से देवदत्ता के शरीर को बड़े आहिस्ता-आहिस्ता मालिश की।

देवदत्ता मूलदेव का कला-कौशल देखकर प्रसन्न हुई। उसके चरणों में गिरकर देवदत्ता ने उसे अपना असली रूप दिखाने का अनुरोध किया।

मूलदेव ने अपने मुँह में से गोली निकाल ली और अपने असली रूप में आ गया।

स्नान के बाद दोनों ने साथ भोजन किया। फिर सुन्दर वस्त्र पहन दोनों गोष्ठी करने लगे। देवदत्ता ने मूलदेव की प्रशंसा की और उससे प्रतिदिन दर्शन देने का अनुरोध किया। लेकिन मूलदेव ने उत्तर दिया—"मैं परदेशी हूँ और निर्धन हूँ, फिर दोनों में प्रीति कैसे हो सकती है?" मूलदेव ने एक सुभाषित सुनाया—"जैसे पक्षी फलहीन वृक्ष को, सारस सूखे तालाब को, भौंरे मुरझाये हुए फूल को, जंगली जानवर जलते हुए वन को और नौकर-चाकर भ्रष्ट राजा को छोड़ देते हैं, वैसे ही गणिकायें भी निर्धन पुरुष को छोड़ देती हैं। वास्तव में सब लोग अपने-अपने स्वार्थ के वश होकर प्रेम करते हैं, फिर कौन किसका प्रिय कहा जा सकता है?"

देवदत्ता ने उत्तर दिया—"स्वदेश हो या परदेश, सज्जन पुरुषों के प्रति बिना कारण ही प्रेम हो जाता है।" उसने एक सुभाषित पढ़ा—

"जैसे समुद्र से निकला हुआ चन्द्रमा शिवजी के मस्तक पर विराजता है वैसे ही गुणी पुरुष जहाँ भी जायें अपने गुणों के कारण सम्मान पाते हैं।"

देवदत्ता ने मूलदेव से कहा कि सारहीन धन सम्पत्ति में समझदार पुरुषों का आदरभाव नहीं होता, वे तो गुणों में ही अनुराग करते हैं, अतएव आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें।

मूलदेव का आना-जाना शुरू हो गया। दोनों में प्रीति बढ़ती गई।

अचल नाम का एक व्यापारी देवदत्ता का दूसरा प्रेमी था। वह मुँहमाँगे वस्त्र, आभूषण आदि देकर उसे प्रसन्न रखता था। जब अचल को मूलदेव को आने का पता लगा तो उसे बहुत बुरा लगा वह उसे अपमानित करने का मौका ढूँढने लगा।

एक दिन देवदत्ता की माँ ने अपनी बेटी से कहा—"बेटी ! तू मूलदेव को क्यों नहीं छोड़ देती ? ऐसे कंगाल से क्या फायदा ? अचल को देख, वह तेरा कितना ध्यान रखता है। तू उसी से क्यों प्रेम नहीं करती ? तू जानती है, एक म्यान में दो तलवारें नहीं रहतीं, अलोने पत्थर को कोई नहीं चाटता, इसलिये तू इस जुआरी से दूर ही रह।"

लेकिन देवदत्ता ने उत्तर दिया—"माँ ! मै केवल धन की लालची नहीं, मैं गुणो की भी कद्र करती हूँ। मूलदेव गुणी है, इसलिये मै उसे कैसे छोड़ सकती हूँ ?"

माँ ने कहा—"बेटी ! आलता माँगने पर वह खाली हाथ चला आता है, गंडेरी माँगने पर गन्ने के छिलके ले आता है और फूल माँगने पर डंठल उठा लाता है, फिर भी न जाने तू उसे क्यो चाहती है ?"

एक दिन देवदत्ता ने अचल से गन्ना मँगवाने को कहा। अचल ने फौरन ही गाड़ी भर कर गन्ने भेज दिये। देवदत्ता ने कहा कि क्या मै हथिनी हूँ जो इतने गन्ने खाऊँगी। माँ ने कहा—"बेटी ! तू देखती नहीं वह कितना उदार है !"

कुछ दिन बाद मूलदेव से गन्ने मँगवाये गये। मूलदेव ने दो गन्ने छीलकर उनकी गंडेरियाँ बनाईं, इलायची और कपूर छिड़ककर उनमें खूशबू दी, फिर बीच मे से थोड़ा-सा काटकर उनमें सींक लगा दी। इसके बाद इन गंडेरियो को एक डिब्बे में भरकर उसे देवदत्ता के पास भेजवा दिया। डिब्बे को देखकर देवदत्ता ने अपनी माँ से कहा—"देखा माँ ! आदमी-आदमी में कितना अन्तर है ! अब तुम समझ सकती हो, मूलदेव से मै क्यों प्यार करती हूँ।"

देवदत्ता की माँ ने सोचा, इस तरह तो यह मूलदेव को कभी छोड़नेवाली नहीं। उसने अचल के साथ मिलकर एक षड्यन्त्र रचा।

एक दिन झूठमूठ का बहाना बनाकर अचल किसी गाँव को चला गया। यह जानकर मूलदेव निश्चिन्त हो देवदत्ता से मिलने आया। लेकिन

कुछ ही समय बाद देवदत्ता की माँ ने खबर दी कि अचल बहुत-सा सामान लेकर उपस्थित हुआ है। देवदत्ता ने मूलदेव को पलंग के नीचे छिपा दिया।

अचल पलंग के ऊपर बैठ गया और स्नान की सामग्री तैयार करने का उसने हुकुम दिया। देवदत्ता ने कहा—"अच्छी बात है, तुम कपड़े निकालो, मै तुम्हारे उबटन मलती हूँ।" लेकिन अचल ने उत्तर दिया—"मुझे कल रात को स्वप्न आया है कि कपड़े पहने-पहने उबटन लगवाकर इसी पलंग पर बैठे हुए मैंने स्नान किया है। इसलिये प्रिये! तू मेरे स्वप्न को सच्चा कर।" देवदत्ता ने कहा—"इससे तो मेरे सारे कीमती गद्दे, तकिये बरबाद हो जायँगे।" अचल ने उत्तर दिया—"इसकी तुम क्या परवा करती हो? जितने कहोगी इनसे भी अच्छे-अच्छे बनवा दूँगा।"

माँ ने भी अचल के प्रस्ताव का समर्थन किया। इसके बाद अचल ने पलंग पर बैठ उबटन लगवाकर गर्म पानी से स्नान किया। स्नान का सब पानी मूलदेव के ऊपर पड़ा।

देवदत्ता की माँ ने अचल को इशारा किया। अचल ने मूलदेव के बाल पकड़कर खींच लिये और उसे भला-बुरा कहने लगा। शस्त्रधारी पुरुषों ने घर को घेर लिया था। मूलदेव ने सोचा, अब पौरुष दिखाना व्यर्थ है। अचल ने भी डाँट-डपटकर मूलदेव को छोड़ दिया।

मूलदेव को बड़ी आत्मग्लानि हुई। वह उज्जैनी छोड़कर चला गया।

वह बेन्यातट नगर में पहुँचा। नगर के बाहर चंपा के वृक्ष की छाया में लेटा हुआ वह विश्राम कर रहा था। संयोगवश इसी समय नगर का राजा मर गया था और उसके कोई पुत्र न था जो राज्य का उत्तराधिकारी हो सके। नियमानुसार पाँच दिव्य पदार्थ नगर मे घुमाये गये जो मूलदेव के पास आकर ठहर गये। मूलदेव को देखकर हाथी ने चिंघाड़ मारी, घोड़ा हिनहिनाने लगा, झारी जल से अभिषेक करने लगी, चामर सिर

पर झुलने लगे और कमल मस्तक पर विराजमान हो गया। यह देखकर लोग जय-जयकार करने लगे और बड़े गाजे-बाजे के साथ मूलदेव को हाथी पर चढ़ाकर नगर में प्रवेश कराया गया। बड़ी धूमधाम से मूलदेव का अभिषेक हुआ और उसे विक्रमराज नाम का राजा घोषित कर दिया गया।

अचल का व्यवहार देखकर देवदत्ता को उससे बड़ी घृणा हुई। देवदत्ता ने कहा—"मै वेश्या हूँ, तेरी घरवाली नहीं, फिर भी मेरे घर में ऐसा नीच बर्ताव करते हुए तुझे शर्म नहीं आती!" अचल को देवदत्ता ने अपने घर से निकाल बाहर किया। फिर राजा के पास पहुँचकर उसने निवेदन किया कि मूलदेव को छोड़कर अन्य किसी पुरुष को उसके घर न आने दिया जाय।

अचल बहुत-सा माल भरकर पारस देश के लिये रवाना हो गया।

इधर मूलदेव ने देवदत्ता और उज्जैनी के राजा को पत्र लिखा और उन्हें अनेक उपहार भेजे। मूलदेव के अनुरोध पर उज्जैनी के राजा ने देवदत्ता को मूलदेव के पास भेज दिया। देवदत्ता मूलदेव की रानी बन-कर रहने लगी।

९ : कामलता का मरण-कपट

भद्रिलपुर नगर में सुन्दर नाम का एक सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम लक्ष्मी था। सुन्दर के कोई सन्तान न थी, इसलिये वह उदास रहा करता था।

एक दिन लक्ष्मी ने अपने पति से उदासी का कारण पूछा। उसने बता दिया। लक्ष्मी ने कहा, यदि ऐसी बात है तो दूसरी शादी क्यों नहीं कर लेते? लेकिन सुन्दर राजी न हुआ।

उसी नगर में अशोका नाम की देवी का एक मंदिर था। लोगों का विश्वास था कि उसकी यथाविधि पूजा-उपासना करने से वह मन-वाछित फल देती है। सुन्दर सेठ ने कपूर, कुंकम और पुष्प आदि से देवी की उपासना की जिससे एक पुत्र हुआ। पुत्र का नाम अशोक रखा गया।

अशोक बड़ा हुआ। सुन्दर सेठ ने सोचा कि सेठों के लड़के बड़े होकर वेश्यागामी हो जाते हैं जिससे सारा धन बरबाद हो जाता है,

इसलिये उचित है कि इसे वेश्याचरित की शिक्षा दी जाय। सेठ ने चंडा नाम की एक कुट्टिनी को बुलाया और वेश्याचरित सिखाने के लिये अपने पुत्र को उसके सुपुर्द कर दिया।

जंडा अशोक को अपने घर ले गई। सबसे पहले वेश्याओ का स्वरूप बताते हुए उसने उपदेश दिया—

"देखो, वेश्यायें कपड़े-लत्ते और आभूषण पहनकर ही ऊपर-ऊपर से ही सुन्दर दिखाई देती हैं, लेकिन ये बिलकुल ही सुन्दर नहीं हैं। यौवनवती वेश्याये पुरुषों की विविध प्रकार से सेवा-टहल करके उनके मन और धन को हर लेती हैं, अपना कुछ भी उन्हें नहीं देतीं। अनेक प्रकार के कपटपूर्ण चाटु वचनो से वे पुरुष मे स्नेह उत्पन्न करती है। बंदरियों की भाँति वे चंचल स्वभाव की होती हैं। वे बहुत लालची होती हैं और जो उन्हें मिलता है उसे प्राप्त कर मौज से रहती हैं। अतएव ऊपर-ऊपर से सुन्दर दिखाई देनेवाली वेश्याओं से भले आदमियों को सदा दूर ही रहना चाहिये। जरा सोचकर देखो, क्या कभी कोई कुतिया भी गंगा में नहाने से पवित्र हुई है? वेश्यायें ऊपर-ऊपर से रोती है और मन में हँसती हैं, ऐसा लगता है जैसे वे सब बातों का रहस्य समझती हों।"

इसके बाद चण्डा अशोक को गौरी, ललिता, रम्भा और मदना नाम की अपनी चार कन्याओं के महलो में ले गई। उसने अशोक से उनके चरित का छिपकर अध्ययन करने के लिये कहा।

सबसे पहले अशोक गौरी के महल की तरफ बढ़ा। उसने देखा कि शिव नाम के किसी परिचित पुरुष के अचानक घर में प्रवेश करने पर गौरी ने पहले आये हुए पुरुष को दूसरे दरवाजे से बाहर किया। उसने अपनी मंगलवेणी गूँथ ली और जल्दी-जल्दी आभूषण, पुष्प, ताम्बूल आदि को दूर हटा दिया। फिर आँखों में आँसू भरकर अपने 'प्राणनाथ' का स्वागत करने लगी।

शिव ने कुशल-समाचार पूछे। गौरी ने उत्तर दिया—"प्राणनाथ ! आपके विरह मे मैं कुशल से कैसे रह सकती हूँ ? मैं कितनी सौभाग्यवती हूँ जो देवी-देवताओं की मनौती के बाद आपके दर्शन हुए।" फिर उसने कहा—"हे प्रियतम ! आप सच मानिये, जैसे थोड़े से जल में तड़फड़ाती हुई मछली किसी तरह जीवन बिताती है, उसी तरह आपकी विरहाग्नि में जलते हुए मेरा सारा दिन बीतता है।"

गौरी के प्रेमभरे वचन सुनकर शिव बहुत प्रसन्न हुआ और उसने वस्त्र, आभूषण, पुष्प, ताम्बूल आदि से गौरी को प्रसन्न किया।

अशोक सोचने लगा—"ये वेश्यायें निश्चय ही कपटरूपी कुटुम्ब के लिये कुटिया और विवेकरूपी सूर्य के लिये मेघमाला के समान हैं। इनकी बुद्धि हमेशा दूसरे को ठगने में ही लगी रहती है।"

अशोक ललिता के भवन की ओर चला। उसके पास दत्त नाम का एक धनी व्यक्ति रोज आता था। उसके स्नेहवश उसने अपनी घरवाली को भी छोड़ दिया था। ललिता जो कुछ माँगती उसे देकर वह उसे सदा प्रसन्न रखता।

लेकिन ललिता उसे सोता छोड़कर अन्य पुरुष के पास चली जाती और पूछने पर माता, पिता और गुरुजनों की कसम खाकर अपनी सचाई का विश्वास दिलाती।

अशोक विचार करने लगा—"ये वेश्यायें भी कैसी हैं जो झूठी कसम खाकर दूसरों को प्रसन्न करती हैं, लेकिन स्वयं कभी प्रसन्न नहीं होतीं, वे धन को छीन लेती हैं लेकिन धन के द्वारा कभी वश में नहीं की जातीं।"

वहाँ से अशोक रम्भा के महल में गया। रम्भा मुग्ध नाम के किसी पुरुष से प्रेम करती थी। एक दिन अपने प्रेमी से उसने कहा—"जिन्दगी भर तुम मेरे ही घर में क्यों नहीं रहते ? अपना सारा धन मेरी माँ के सुपुर्द कर दो, फिर निश्चिन्त होकर रहना।" मुग्ध रम्भा की

बातों में आ गया, और उसने अपना सारा गड़ा हुआ धन रम्भा की माँ के हवाले कर दिया।

एक दिन रम्भा ने नगर के कोतवाल को अपने घर बुला लिया और मुग्ध से कहा—"देखो, वह मुझे मेरी फीस दे चुका है इसलिये अब मैं उसे वापस नहीं भेज सकती। ऐसी परिस्थिति में यदि तुम केवल एक रात के लिये और कहीं चले जाओ तो ठीक रहे।" मुग्ध रम्भा की बातों में आकर वहाँ से चला गया और बहुत चाहने पर भी फिर उस घर में कभी प्रवेश न पा सका।

अशोक को यह सब देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा—

"वेश्यायें कितनी कृतघ्न होती हैं। ये धन की लालची होती हैं और जबान से कही हुई बात को कभी पूरी नहीं करतीं।"

अन्त में अशोक मदना को देखने चला। भद्र नाम का कोई वणिक्पुत्र मदना को बहुत चाहता था, लेकिन निर्धन होने से मदना उससे प्रेम नहीं करती थी।

भद्र बड़ा दुखी हुआ। वह अशोका देवी के मन्दिर में गया और उसकी मनौती से उसे चिन्तामणि रत्न की प्राप्ति हुई। मदना को पता लगा तो उसने भद्र को अपने घर बुलाकर उसका स्वागत किया।

भद्र वहीं रहने लगा। एक दिन मदना ने मौका पाकर भद्र की जेब में से वह रत्न उड़ा लिया और भद्र को घर से निकलवा दिया।

मदना की यह करतूत देखकर अशोक सोचने लगा—"ये वेश्यायें भी कैसी हैं। न इनमें दया है, न लोकलाज, न उन्हें अपयश का भय है, न पाप की शंका। वे तो बस एक धन पाने के लिये जुटी रहती हैं।"

इस प्रकार अशोक ने बारह वर्ष चण्डा के घर रहकर वेश्याचरित का अध्ययन किया। इसके बाद चण्डा उसे सुन्दर सेठ के पास ले गई। उसने कहा—"सेठजी! अब आपका पुत्र वेश्याओं से कभी नहीं ठगा

जा सकता ।" सुन्दर सेठ बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने चण्डा को एक लाख दीनार देकर विदा किया ।

समय बीतता गया । एक दिन अशोक ने सोचा—यहाँ पड़े रहने से क्या लाभ ? विदेश जाकर धन कमाना चाहिये ।

दस लाख का माल भरकर वह गजपुर के लिये रवाना हो गया ।

उन दिनों गजपुर में कामलता नाम की एक रूपवती वेश्या रहती थी । उसे अशोक के आगमन का पता लगा तो उसने सोचा, किसी उपाय से इसका धन हड़पना चाहिये । उसने अपनी दूती को अशोक के निवासस्थान पर भेजा । इसमें सफलता न मिली तो वह स्वयं गई । अशोक के पास पहुँचकर वह कहने लगी—"हे सुन्दर ! जब से मैंने आपको देखा है तभी से कामदेव के बाणों से घायल हो गई हूँ । कृपा करके मेरे घर पधारने का अनुग्रह करें । धन की मैं भूखी नहीं हूँ, मैं तो आपके गुणों की ग्राहक हूँ ।"

कामलता ने बार-बार अशोक से घर चलने का अनुरोध किया । अशोक ने सोचा—"धन तो यह चाहती नहीं, फिर जाने में क्या हर्ज है ?"

एक दिन वह कामलता के घर जा पहुँचा । कामलता बड़ी प्रसन्न हुई । वह कहने लगी—"आज मेरा अहोभाग्य है जो आपने मेरे घर को अपनी चरणरज से पवित्र किया है ।"

धीरे-धीरे अशोक का आना-जाना शुरू हो गया और वह वहीं रहने लगा ।

एक दिन पड़ोस की कुट्टिनियों ने मिलकर कामलता से कहा—"तुम्हारा यह प्रेमी भी कैसा है जो माँगने पर भी धन नहीं देता, अवश्य ही इसने कहीं वेश्याचरित की शिक्षा पाई है । इसलिये जीवित-कपट के स्थान पर अब इसके ऊपर मरण-कपट का प्रयोग करना चाहिये ।"

एक दिन कामलता ने मदभरे वचनों से अशोक को संबोधन करते हुए कहा—"प्रियतम ! जब तुमने मेरे घर न आने का प्रण कर रखा था तो मैंने गोमुख यक्ष की आराधना करते हुए वचन दिया था कि यदि मैं तुम्हें पा सकी तो मैं तुम्हारे दिये हुए सुन्दर वस्त्राभूषण पहनकर बड़े ठाठ से यक्ष की पूजा करूँगी, नहीं तो आग में जल मरूँगी। प्रियतम ! बड़े भाग्य से मैंने तुम्हे पाया है, इसलिये अब मैं अपना वादा पूरा करना चाहती हूँ।"

यह सुनकर अशोक चुप रहा। कामलता ने फिर कहना शुरू किया—"प्राणनाथ ! क्या मै आपकी प्रेमिका नहीं जो आप अपने धन को मुझसे भी अधिक चाहते हैं ? यदि ऐसी बात है तो मेरा मर जाना ही अच्छा है।"

यह कहकर कामलता ने यक्ष के सामने चन्दन की चिता रचाई और अशोक के देखते-देखते उसमें प्रवेश कर गई। चिता जलने लगी। चारों ओर हाहाकार मच गया। कामलता की दासियाँ विलाप करने लगीं।

अशोक को कामलता के मर जाने का बहुत दुख हुआ। वह सोचने लगा—"इसने जलती हुई चिता में प्रवेश किया है, इसलिये किसी भी हालत में यह एक मामूली वेश्या तो नहीं हो सकती। दुःख है कि इसके अग्नि में प्रवेश करते समय मै चुपचाप बैठा रहा।"

इस तरह विलाप करता हुआ अशोक जब कुट्टिनियों के पास पहुँचा तो पुरुष वेषधारी एक कुट्टनी उससे कहने लगी—"देखो, मैं कोढ़, भगंदर, क्षय आदि रोगों को अच्छा करती हूँ, मन्त्र और औषधिय द्वारा विष का नाश करती हूँ; तथा यक्ष, राक्षस, डाकिनी और भूत-पिशाच उतारती हूँ। और तो क्या आग से जलकर मरे हुए आदमी तक को मैं जिला सकती हूँ।" अशोक ने कहा—"यदि ऐसी बात है तो कृपा कर मेरी प्रेमिका को जिलाने का अनुग्रह कीजिये।"

कुट्टिनी ने कहा—"यह काम कोई कठिन नहीं है, लेकिन इसमें रुपया बहुत खर्च होगा।" अशोक ने स्वीकृति दे दी।

एक मंडप तैयार किया गया। उसमें एक मंडल बना और होम आरम्भ हो गया। सातवें दिन कामलता सुरंग मार्ग से आती हुई दिखाई दी। अशोक की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

अशोक कामलता को मुँहमाँगा धन देने लगा। शीघ्र ही उसका सब धन समाप्त हो गया और कामलता ने उसे घर से बाहर निकलवा दिया।

उस समय वृक्ष से गिरे हुए एक बन्दर की दशा को प्राप्त हुआ अशोक मन ही मन सोचने लगा—"मैं भी कितना मूर्ख हूँ जो इतनी सी बात भी न समझ सका कि शरीर के जल जाने पर आदमी कैसे जिन्दा हो सकता है ? अवश्य ही इस औरत ने मेरे साथ मरण-कपट किया है। मेरे पिताजी ने मुझे वेश्याचरित की शिक्षा देने के लिये कितना धन खर्च किया, फिर भी मैं मूढ़ का मूढ़ ही रहा।"

घर लौटकर जाने में अशोक को बड़ी शर्म लगी। वह गजपुर में ही रहने लगा।

इस बीच में किसी आदमी ने भद्रिलपुर पहुँचकर सुन्दर सेठ को अशोक का हाल सुनाया। सुन्दर ने फौरन ही चण्डा को बुलाकर डाँटा कि तुमने मेरे पुत्र को कैसी शिक्षा दी कि उसने अपना सब धन खो दिया।

चण्डा ने उत्तर दिया—"सेठजी ! आप चिन्ता न करें। मेरे साथ आप गजपुर पधारें। मेरा नाम चण्डा नहीं जो मैं आपका धन वापस न दिलवा दूँ।"

चण्डा अशोक से मिली। फिर एक डोमिनी का वेश बनाकर सुन्दर के साथ गाती-बजाती कामलता के घर के सामने से निकली। कामलता उसका संगीत बड़े ध्यान से सुनने लगी। इतने में वहाँ अशोक आ गया

और वह चण्डा तथा सुन्दर से लिपट कर रोने लगा। चण्डा ने उससे पूछा—"बेटा ! तेरा धन कहाँ गया ? और तू इस हालत में क्यों है ?"

अशोक ने कामलता की ओर उँगली उठाकर बताया—इसी दुष्टा ने मेरा सब धन ले लिया है।

कामलता डर गई। वह सोचने लगी—"मैंने कितना अनर्थ किया जो धन के लोभ से मैं एक डोम से प्यार करने लगी।" कामलता ने उन लोगों से हाथ जोड़कर विनती की कि इस बात को वे किसी से न कहें।

चण्डा ने उत्तर दिया—"नहीं कहेंगे, लेकिन इसका धन वापस करना होगा।" अशोक का धन वापस मिल गया।

●

१० : पुरुषों का प्रेम

कुण्डिनपुर में सोमदत्त नाम का ब्राह्मण रहता था। सूर्य देवता की आराधना करने से बुढ़ापे में उसे पुत्र हुआ इसलिये उसका नाम रविदत्त रखा गया। रविदत्त बड़ा हुआ और सोलह वर्ष की अवस्था में वह वेद-वेदांग आदि विद्याओं में पारंगत हो गया। रविदत्त सोमदत्त का इकलौता बेटा था इसलिये सोमदत्त ने उसे समस्त कलाओं की शिक्षा देने में कोई कमी न की। सोमदत्त ने अपने बेटे को युवतियों से दूर ही रहने का उपदेश देते हुए कहा—

"देखो बेटा! युवतियाँ दूर से ही मन को मोहित करती हैं जिससे लोग गुरु का उपदेश भूल जाते हैं, उनका शास्त्रों का अभ्यास नष्ट हो जाता है, उनके अभिमान की गाँठ टूट जाती है, जाति का घमण्ड दूर हो जाता है तथा धैर्य और विवेक भाग जाते हैं, इसलिये उनकी विकार

पूर्ण दृष्टि से सदा दूर ही रहना चाहिये। औरो की तो बात क्या, स्वयं पुरुरवा को उर्वशी ने अपने नयन-कटाक्षो से वश मे कर लिया था।"

कुछ दिनो बाद सोमदत्त के माता-पिता इस लोक से चल बसे और वह अकेला रह गया। एक बार की बात है, वसन्त में कामदेव की यात्रा का उत्सव मनाया जा रहा था। रविदत्त जानता था कि उसके पिता ने उसे ऐसे उत्सवो से दूर ही रहने का उपदेश दिया था। लेकिन रविदत्त के यार-दोस्तो ने उत्सव में शामिल होने के लिये उससे बहुत आग्रह किया। रविदत्त उनकी बात न टाल सका और अपनी मित्र-मण्डली के साथ कामदेव के मन्दिर में पहुँचा।

विनयवती नाम की एक अत्यन्त रूपवती वेश्या भी वहाँ आई हुई थी। रविदत्त की आँखें उससे लड़ी और वह सुध-बुध भूल गया। विनयवती भी कामदेव के बाणो से घायल हुई। रविदत्त के अनुपम सौंदर्य पर रीझ कर वह मन्द हास्यपूर्वक मदभरे नेत्रों से बार-बार उसकी ओर निहारती। रविदत्त भी अपने ऊपर काबू खो बैठा। मन्दिर में पहुँचकर उसने कामदेव की पूजा की और फिर अनमने भाव से वह अपने घर की ओर बढ़ा। विनयवती भी उसी के सोच में अपनी सखियों के साथ घर लौट गई।

लेकिन विनयवती को कहाँ चैन थी! घर पहुँचते ही उसने संगमिका दासी को रविदत्त के घर भेजा; उस समय रविदत्त अपनी शिष्य-मण्डली के साथ बैठे हुए थे। उन्हे एकान्त में ले जाकर संगमिका ने निवेदन किया—

"महाराज! जब से मेरी स्वामिनी ने आपके रूपमाधुर्य का पान किया है तभी से अपने मन पर से वे काबू खो बैठी हैं। किसी भी तरह आपको पाने की उत्कट अभिलाषा उनके मन मे जाग्रत हो उठी है। शास्त्रों म स्त्री-हत्या को महान् पाप कहा गया है, इसलिये कृपा कर आप शीघ्र ही पधार कर मेरी स्वामिनी को प्राणों की भिक्षा दे।"

संगमिका का निवेदन सुनकर रविदत्त का मन बड़ी दुविधा में पड़ गया। एक ओर तो उसे अपने पिताजी के उपदेश का स्मरण हो रहा था और दूसरी ओर काम से आतुर होने के कारण वह अत्यन्त अधीर हो उठा था। फिर भी अपने को सँभालते हुए उसने उत्तर दिया—

"संगमिके! जो तुमने कहा है ठीक है, लेकिन यह कार्य मेरी जाति और कुल को शोभा नहीं देता। मेरे गुरुजनों का उपदेश है कि युवतियों की छाया तक से दूर ही रहना चाहिये।"

लेकिन संगमिका की चतुराई के सामने रविदत्त को हार माननी पड़ी। विनयवती का निमंत्रण उसने स्वीकार कर लिया।

रविदत्त विनयवती के यहाँ आने-जाने लगा और मुँहमाँगा सोना, चाँदी, वस्त्र और आभूषण उसको भेंट चढ़ाने लगा। इस तरह बहुत दिन बीत गये।

रविदत्त का धन अब समाप्त होने को आया, इसलिये विनयवती चिंतित थी कि किस तरह वह उससे पिंड छुड़ाये।

एक दिन विनयवती ने संगमिका के हाथ रविदत्त को सन्देश भिजवाया—

"महाराज! आपको मालूम हो कि वसुदत्त नाम का कोई व्यापारी सुवर्ण द्वीप से बहुत-सा धन कमाकर लौटा है। आपकी दासी विनयवती को वह बहुत चाहता है। उसने कहलवाया है कि यदि एक रात भी वह उसके साथ बिता सके तो उसे वह अपनी सारी सम्पत्ति भेंट कर देगा।"

संगमिका ने दो-तीन दिन रविदत्त को अपने ही घर में रहने के लिये कहा।

लेकिन घर में अकेले पड़े-पड़े रविदत्त का मन न लगता। न उसे रात को चैन पड़ती न दिन को। अपनी प्रेमिका के वियोग में वह व्याकुल रहता।

किसी तरह दो दिन बीते। अगले दिन सुबह वह विनयवती के ऑगन में जा पहुँचा। उसकी चेष्टाओ से उसकी मनोवृत्ति का साफ-साफ पता लगता था।

विनयवती के यहाँ से अपमानित हो वह संगमिका के पास पहुँचा। उसने भी उसे घर से निकलवा दिया।

लेकिन बार-बार अपमानित होने पर भी रविदत्त के प्रेम में कमी न आई।

यह देखकर विनयवती की माँ ने वैशिक-शास्त्र का रहस्य उद्घाटन करते हुए अपनी पुत्री से कहा—"देखो बेटी! कुछ पुरुषों का प्रेम नील के समान होता है। जैसे नील से रँगे हुए वस्त्र को खार से धोने पर भी उसका रंग नहीं छूटता, वैसे ही ऐसे पुरुषो के प्रेम के टुकडे-टुकडे हो जाने पर भी उनके प्रेम की अतिशयता में कमी नहीं आती।"

●

११ : वसंततिलका और धम्मिल्ल

कुशाग्रपुर नगर में धम्मिल्ल नाम का कोई राजकुमार रहता था। धनवसु की कन्या यशोमति से उसका विवाह हुआ था। विवाह के बाद भी धम्मिल्ल का मन पढ़ने-लिखने में ही अधिक रहता था। इसलिये वह अपनी नवविवाहिता पत्नी की ओर विशेष ध्यान नहीं देता था।

एक बार की बात है, धम्मिल्ल की सास अपनी लड़की से मिलने आई। गृहस्वामी ने अपनी शक्ति के अनुसार उसका यथोचित आदर-सत्कार किया। अपनी लड़की से उसने कुशल-समाचार पूछे। लड़की ने लज्जा से मुँह नीचे करके अपने पतिदेव के उदासीन भाव की ओर इंगित करते हुए कहा—

"माँ! वे तो मुझ अकेली को सोती छोड़ रेवा नदी के जल से पवित्र खड़िया मिट्टी से चौकोण पट्टी पर लिखते हुए व्याकरण के सूत्र घोखते रहते हैं।"

माँ को यह बात अजीब लगी । उसने अपनी समधिन से चर्चा की । समधिन को भी अच्छा न लगा । उसने कहा कि इस सम्बन्ध में वह जरूर कुछ करेगी । माँ अपनी लड़की को दिलासा देकर अपने घर लौट गई ।

धम्मिल्ल की माँ ने अपने पति से बातचीत की । पति ने उत्तर दिया—"तुम नहीं समझती, जब तक पुत्र का मन पढ़ने-लिखने में लगा रहता है तब तक ही अच्छा है । यदि नई-नई विद्या को गुना न जाय तो जैसे तेल के बिना दीपक बुझ जाता है वैसे ही विद्या भी नष्ट हो जाती है ।" लेकिन माँ ने कहा—"बहुत अधिक पढ़ने से क्या फायदा ? जीवन के सुख का उपभोग भी तो करना चाहिये ।"

पति के मना करने पर भी उपभोग-क्रीड़ा मे कुशलता प्राप्त करने के लिये धम्मिल्ल की माँ ने अपने बेटे को ललिता नाम की गोष्ठी में भेज दिया । धम्मिल्ल बाग-बगीचो और सभा आदि मे घूमता-फिरता आनन्द-पूर्वक समय बिताने लगा ।

यहाँ एक वसततिलका नाम की गणिका रहती थी, उसके घर रहकर उसने गीत, हास्य आदि कलाओ की शिक्षा प्राप्त की । धम्मिल्ल के माता-पिता अपनी दासी के हाथ प्रतिदिन पाँच सौ की रकम वसंततिलका के पास भिजवा देते ।

लेकिन कुछ ही दिन बाद धम्मिल्ल की माँ को पता लगा कि बाप-दादाओ का धन पानी की तरह बह रहा है । एक दिन उसे उदास देखकर उसके पति ने कहा—"अरी ! तुझे तो अपना पुत्र बहुत लाडला था, अब दुखी होने से क्या फायदा ? उस समय तो तूने एक न सुनी ?"

रोते हुए धम्मिल्ल की माँ ने उत्तर दिया—"क्या बताऊँ, पुत्र के मोह में मै इतनी अंधी बन गई कि मुझे कुछ सूझा ही नहीं ।"

पति ने कहा—"तू कितनी भोली है ! यह तो ऐसी ही बात हुई जैसे कोई घास का पूला बहुत दूर से सिर पर उठा कर लाये और उसे आग में झोक दे । खैर, अब चिन्ता करने से कुछ नहीं होता ।"

आँखों में आँसू भरकर धम्मिल्ल की माँ ने उत्तर दिया—"मैं क्या जानती थी कि वसुभूति ब्राह्मण के जैसा हमारा भी हाल होगा।"

यह कहकर उसने वसुभूति की कथा सुनाई—

नन्दपुर नगर में वसुभूति नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम यज्ञदत्ता था। उसके सोमशर्म नाम का एक पुत्र और सोमशर्मा नाम की पुत्री थी। इन्होंने रोहिणी नाम की एक गाय पाल रखी थी।

वसुभूति दरिद्र होने के कारण बड़ी मुश्किल से गुजारा कर पाता। उसकी तंग हालत देखकर किसी धर्मात्मा आदमी ने उसे एक खेत दान कर दिया। उसने खेत में धान रोप दिये।

एक दिन किसी काम से ब्राह्मण को बाहर जाना पड़ गया। अपने पुत्र से उसने कहा—"देखो, बेटा! मैं बाहर जा रहा हूँ। चन्द्रग्रहण के अवसर पर मैं किसी आदमी को पैसे के लिये तुम्हारे पास भेजूँगा। तुम खेत की अच्छी तरह रखवाली करना। इससे जो आमदनी होगी उसे मैं तुम्हारे और तुम्हारी बहन के विवाह में लगा दूँगा। तब तक रोहिणी भी बिया जायगी।"

संयोग की बात, कुछ दिन बाद वहाँ कोई नट आया। उसकी नटी की संगत से सोमशर्म नट बन गया और किसी धूर्त की संगत से सोमशर्मा गर्भवती हो गई। रोहिणी का गर्भ गिर गया और खेत के धान परवाह न करने के कारण सूख गये।

कुछ दिन बाद बड़ी आशा से वसुभूति घर लौटा और अपनी ब्राह्मणी से उसने सारा हाल सुना तो वह सिर धुन कर बैठ गया।

धम्मिल्ल के माता-पिता इस दुनिया से कूच कर गये और उसकी पत्नी घर बेचकर अपने पीहर चली गई। जाते समय अपने आभूषण एक पोटली में बाँध वह वसंततिलका के यहाँ भेजती गई। वसंततिलका समझ गई कि उसका प्रेमी अब खुक्ख हो गया है।

एक दिन वसततिलका की माँ ने अपनी पुत्री से कहा—"बेटी ! फलरहित वृक्ष को पक्षी छोड़कर चले जाते है और तालाब के सूख जाने पर हंस और चकवा उसे छोड़ देते हैं, इसलिये हमारी जैसी गणिकाओं को निर्धन पुरुषों से प्रेम नहीं करना चाहिये । धम्मिल्ल अब खुक्ख हो गया है, तुम उसे क्यों नहीं छोड़ देती ?"

वसंततिलका ने उत्तर दिया—"माँ ! मुझे धन की जरूरत नही, मैं तो गुणों को चाहनेवाली हूँ । इस भूमण्डल पर धम्मिल्ल के समान अन्य कोई पुरुष मेरे देखने में नहीं आया । यदि तुम चाहती हो कि मै शान्ति से रहूँ तो इस सम्बन्ध मे आइन्दा बात मत करना । इसके बिना तो मैं पलभर भी जिन्दा नहीं रह सकती ।"

माँ ने कहा—"कोई बात नहीं बेटी ! जैसा तू चाहती है वैसा ही होगा, आइन्दा कुछ न कहूँगी ।"

एक दिन की बात है, वसंततिलका दर्पण सामने रखकर शृङ्गार कर रही थी । उसने अपनी माँ से आलता लाने को कहा । उसने कहीं से पुराना आलता लाकर दे दिया । वसंततिलका ने पूछा—"यह इतना फीका क्यों है ?" माँ ने उत्तर दिया—"जैसा धम्मिल्ल है वैसा ही यह भी है ।" वसंततिलका ने पूछा—"क्या यह किसी काम में नहीं आ सकता ?" माँ ने उत्तर दिया—"नहीं ।" वसंततिलका ने उसे खोट-पीटकर लीपने के काम में ले लिया ।

एक दिन तिलों के पूले में से तिल झाड़कर एक पूला लाया गया । वसंततिलका ने माँ से पूछा—"इसमें एक भी तिल नहीं ? इसे कौन लाया है ?" माँ ने उत्तर दिया—"जैसे इस पूले में से तिल झड़ गये हैं वैसे ही धम्मिल्ल भी झड़ चुका है ।" वसंततिलका ने पूले को आग में जलाकर उससे खार बनाया और खार को कपड़े धोने के काम में लिया ।

एक दिन वसंततिलका की माँ ने कहा—"क्या तुझे और कोई नहीं मिलता जो तू इसके पीछे पड़ी है ?" वसंततिलका ने उत्तर दिया—"माँ तुम बहुत कृतघ्न मालूम देती हो।" यह कहकर उसने कृतघ्न कौओं की कहानी सुनाई—

किसी नगर में बारह वर्ष का अकाल पड़ा। नगर के कौए मिलकर सोचने लगे—"सब जगह भुखमरी फैल रही है, लोगों ने काकपिंड तक देना बन्द कर दिया है। कहीं से जूठन तक हमें नहीं मिलती। ऐसी हालत में हम कहाँ जाकर रहें।"

उनमें से बूढ़े कौओं ने सुझाव दिया—"समुद्र के किनारे हम लोगों के भानजे जलकौवे रहते हैं। हमें वे समुद्र से मछलियाँ पकड़कर देंगे। हम क्यों न उनके पास चल-कर रहें।"

सब कौए मिलकर समुद्र के किनारे पहुँच गये। जलकौओं ने अपने मामाओं का खूब स्वागत किया। कौए समुद्र की मछलियाँ खाते हुए आराम से रहने लगे।

बारह वर्ष बाद दुर्भिक्ष समाप्त हो जाने पर कौओं ने अपने नगर को वापस लौटने का विचार किया। लेकिन क्या कहकर वापस लौटें ?

एक दिन उन्होंने अपने भानजों से वापिस जाने की आज्ञा माँगी। उन्होंने कहा—"अभी कुछ दिन और रहिये, अभी क्यों जाते हैं ?" कौओं ने उत्तर दिया—"आप लोगों के अधोभाग के हमें दर्शन करने पड़ते हैं, इसलिये हम अधिक नहीं ठहर सकते।"

कहानी सुनकर वसंततिलका की माँ ने सोचा इस तरह तो यह धम्मिल्ल को न छोड़ेगी।

एक बार घर में कोई उत्सव मनाया गया जिसमें आसपास की गणिकाओं और उनकी पुत्रियों को भी निमन्त्रित किया गया। धम्मिल्ल, वस्त्राभूषणों से अलंकृत अपनी सखियों के साथ बैठी हुई वसंततिलका के साथ मद्यपान करने लगा।

धम्मिल्ल नशे में चूर हो गया तो वसंततिलका की माँ ने मौका पाकर उसे नगर के बाहर छुड़वा दिया। कुछ देर बाद ठण्डी हवा का झोका लगने पर उसका नशा टूटा तो वह वेश्याओं को कोसता हुआ कहने लगा—"वेश्यायें भी कैसी हैं जो धन के लोभ से दावात की मक्खी तक को उठाकर रख लेती हैं और श्रीवत्स से शोभित भगवान् विष्णु तक की परवाह नहीं करतीं !"

धम्मिल्ल ने अपने घर की ओर कदम बढ़ाया। अपने मुहल्ले मे पहुँच-कर उसे पता लगा कि उसके माता-पिता नहीं रहे और उसकी पत्नी अपने पीहर चली गई है। धम्मिल्ल को बड़ी निराशा हुई। उसने आत्म-हत्या करने का प्रयत्न किया लेकिन सफल न हो सका।

उधर वसंततिलका धम्मिल्ल को घर में न देख अपनी माँ पर बहुत क्रोधित हुई। उसने अपनी वेणी बाँध कर प्रतिज्ञा की कि धम्मिल्ल जब तक न लौटेगा तब तक वेणी न खोलेगी और माला, अलंकार आदि का उपयोग न करेगी।

धम्मिल्ल ने देश-विदेश मे भ्रमण किया। अनेक कन्याओं के साथ उसने विवाह किया। वसंततिलका और यशोमती को साथ रखकर वह आनन्द से रहने लगा।

●

१२ : देवदत्ता का कला-कौशल

राजगृह में कृतपुण्य नाम का एक सार्थवाह का पुत्र रहता था। उसकी स्त्री का नाम जयश्री था।

उसी नगर में विविध कलाओं में चतुर देवदत्ता नाम की एक रूपवती गणिका रहती थी। रूप और यौवन से सम्पन्न होने पर भी कुलवधुयें लज्जा के कारण पुरुषों के चित्त को रंजित नहीं कर सकतीं, जब कि लज्जाहीन होने से वेश्यायें पुरुष को अतिशय सुख प्रदान करती हैं। इसीलिये पुरुष अपनी स्त्रियों से उदासीन हो वेश्याओं के प्रति आकृष्ट होते हैं। वेश्याओं के सम्बन्ध में कहा है—

"सम्भोग में कुशल होने पर भी वेश्यायें धनी पुरुष को द्राक्षारस की भाँति निचोड़ लेती हैं। 'यदि तू किसी और से प्रेम करेगा तो निश्चय ही मैं प्राण त्याग दूँगी'—यह कहकर वे अपने प्रेमी के गले में पासा डाल देती हैं। अपने प्रेमी की परवा न कर केवल धन की लालची वेश्याओं के मन में कुछ और होता हैं और वचन में कुछ

और। जब उसके प्रेमी का सब धन खुट जाता है तो वेश्या की माँ तो उसे डाँटती रहती है और वेश्या ऊपर-ऊपर से स्नेह दिखाती रहती है। जैसे-जैसे उसका प्रेमी निर्धन होता जाता है, वैसे-वैसे वेश्या की माँ अधिक निष्ठुर होती जाती है। वह कहती है कि देखो, यह कितना निर्लज्ज है जो यह भी नहीं समझता कि वेश्यायें बिना पैसे के किसी से बात नहीं करतीं। ऐसी हालत में उसकी मौजूदगी में यदि कोई दूसरा प्रेमी वहाँ आता है तो वह इसे किसी गड्ढे आदि में छिपा देती हैं। कुलवधुये वेश्याओं से बिल्कुल उल्टी हैं, वे अपने कुल की मर्यादा का ध्यान रखती हुई, पति के दुराचारी होने पर भी उसका अनुगमन करती हैं; जब कि उनका निर्दय पति अपनी स्त्री की परवा किये बिना वेश्याओं का घर धन से भरता रहता है।"

कहने का तात्पर्य यह कि कृतपुण्य अपनी स्त्री को छोड़कर देवदत्ता से प्रेम करने लगा। धीरे-धीरे उसने अपना सब माल-खजाना देवदत्ता के हवाले कर दिया। जब उसके पास कुछ न रहा तो उसका पिता द्रव्य भेजने लगा और उसके मर जाने पर कृतपुण्य की पतिव्रता साध्वी स्त्री अपने पति की आर्थिक सहायता करने लगी।

देवदत्ता की पैसे की माँग सदा बनी रहती। एक दिन कृतपुण्य की स्त्री ने अपने बचे-खुचे आभूषण भी अपने पतिदेव की खुशी की अन्तिम भेंट चढ़ा दिये। देवदत्ता की माँ समझ गई कि अब यह खुक्ख हो गया है। उसने मदिरा के नशे में चूर कृतपुण्य को रात के समय चौराहे पर छुड़वा दिया।

सुबह होने पर कृतपुण्य को होश आया तो उसे बड़ी आत्मग्लानि हुई। वह सोचने लगा—

'वेश्यायें भी कितनी नीच होती हैं! जब तक उन्हें मुँहमाँगा धन मिलता रहे, तभी तक वे प्यार करती हैं और जब धन नहीं रहता तो अपने प्रेमी को वे छोड़ देती हैं। मुझे धिक्कार है जो मैंने अपने माता-

पिता को कष्ट पहुँचाया और अपने कुल को कलंक लगाया। लोग अपने कमाये हुए धन को शुभ कार्यों में लगाते हैं और मैंने उसे एक नीच वेश्या के हवाले कर दिया !"

कृतपुण्य ने अपने घर मे प्रवेश किया तो जयश्री ने अपने को धन्य समझा। उसने अपने पतिदेव को उबटन मला, सुगन्धित पदार्थों का लेप किया और स्वादिष्ठ भोजन बनाकर खिलाया।

कृतपुण्य को घर में रहते-रहते बहुत दिन हो गये तो उसने सोचा—"इस तरह पड़े रहने से क्या लाभ ? कहीं से धन कमाना चाहिये।" यह सोचकर वह एक काफ़ले के साथ वसन्तपुर के लिये रवाना हो गया।

रास्ते मे एक मन्दिर पड़ा। कृतपुण्य वहाँ खाट बिछाकर सो गया। संयोग की बात, उसी समय किसी वणिकपुत्र की बुढ़िया माँ को समाचार मिला कि समुद्र में जहाज फट जाने के कारण धन कमाने के लिये गया हुआ उसका इकलौता पुत्र मर गया है। वह बहुत दुखी हुई।

इस बुढ़िया के पुत्र की चार स्त्रियाँ थीं, लेकिन उनके कोई सन्तान नहीं थी। बुढ़िया ने सोचा कि किसी उत्तराधिकारी के अभाव में कहीं उसकी सारी सम्पत्ति राजा के खजाने में न चली जाय। यह सोचकर वह किसी ऐसे पुरुष की खोज मे चली जिससे उसकी पुत्रवधुये पुत्रवती हो सकें।

ढूँढ़ती-ढूँढती वह उस मन्दिर मे पहुँची जहाँ कृतपुण्य सोया हुआ था। उसे खाट समेत उठवाकर वह अपने घर ले आई। अपनी पतोहुओं से उसने कहा कि दुर्भाग्य से तुम्हारा पति तो समुद्र में डूब गया है। यह तुम्हारा देवर है जो बहुत दिनो बाद लौट कर आया है।

कृतपुण्य आनन्दपूर्वक रहने लगा। उसने यहाँ बारह वर्ष बिताये और इस बीच मे प्रत्येक स्त्री से पाँच-पाँच सन्तानें हुई।

एक दिन बुढ़िया ने सोचा, इस लम्पट पुरुष को व्यर्थ मे पालने से क्या लाभ ? उसने अपनी पतोहुओं से सलाह की। पतोहुएँ नहीं चाहती

थीं कृतपुण्य वहाँ से चला जाय, लेकिन अपनी सास का विरोध भी वे करना नहीं चाहती थीं। बहुओं ने कृतपुण्य को रास्ते में खाने के लिये बहुत से लड्डू बना दिये। फिर उसे मद्यपान कराकर उसी मन्दिर में छोड़ दिया गया जहाँ से लाये थे।

संयोगवश उसी दिन वह काफला भी लौटकर आया जिसके साथ कृतपुण्य व्यापार के लिये गया था। जयश्री अपने पति के आगमन की खबर सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई। वह उसे घर ले आई।

इस बीच में कृतपुण्य के एक पुत्र हो गया था। वह पढ़ने गया था। वह पढ़कर लौटा तो भूख के मारे रोने लगा। उसकी माँ ने कृतपुण्य के लाये हुए लड्डुओं में से एक लड्डू उसे दे दिया।

लड़के ने लड्डू खाया तो उसमें से एक रत्न निकला। उस रत्न को उसने एक पूड़े बेचनेवाले हलवाई को दे दिया और उसके बदले बहुत से पूड़े ले लिये।

एक बार राजा बिंबसार का प्रिय हाथी सेचनक नदी में नहाने गया और उसे मगर ने पकड़ लिया। राजा के मन्त्री अभयकुमार ने सलाह दी कि यदि कहीं से जलकान्त मणि मिल सके तो हाथी की रक्षा हो सकती है। राजा ने नगर भर में घोषणा कर दी कि जो कोई जलकान्त मणि लाकर देगा उसे आधा राज्य और राजकन्या दी जायगी।

पूड़े बेचनेवाले हलवाई ने जब यह घोषणा सुनी तो वह रत्न लेकर राज दरबार में पहुँचा। इस रत्न को नदी में डालते ही सब जगह प्रकाश ही प्रकाश फैल गया। मगर ने समझा कि वह जल से थल पर आ गया है। उसने झट से हाथी को छोड दिया।

मालूम हुआ कि इस रत्न का स्वामी कृतपुण्य है। राजा ने कृत-पुण्य को बुलाकर उसका सम्मान किया और उसे अपनी कन्या और आधा राज्य दे दिया।

देवदत्ता यह खबर पाकर बड़ी प्रसन्न हुई। उसने अपनी एक चतुर दासी को कृतपुण्य के पास भेजा। आँखो में आँसू भरकर दासी ने निवेदन किया—

"महाराज! जब से आप गये है देवदत्ता ने समस्त आभूषणो का त्याग कर दिया है और आपके वियोग मे स्नान, विलेपन, माला, ताम्बूल आदि का परित्याग कर एक वेणी बाँधकर वह समय बिता रही है।"

कृतपुण्य सोचने लगा—

"यह भी विचित्र दुनिया है जो कुछ मैंने स्वयं अपनी आँखो से देखा है और कानो से सुना है, उसे यह एक दासी अपनी कुशलता से झुठला रही है। ये वेश्यायें लोहे की जंजीर की भाँति अत्यन्त वक्र हैं और जैसे अंकुश के द्वारा हाथी को वश में किया जाता है वैसे ही ये पुरुष को वश में करती हैं। इनका विश्वास कौन करेगा?"

●

१३ : यमजिह्वा का बन्दर

चित्रकूट नगर में रत्नवर्मा नाम का एक धनी वणिक् रहता था। उसके एक इकलौता पुत्र था जिसका नाम ईश्वरवर्मा था। जब ईश्वर-वर्मा जवान हो गया तो उसके पिता ने सोचा कि इसे किसी कुट्टनी के पास भेजकर वेश्याचरित सिखाना चाहिये जिससे यह वेश्याओं द्वारा ठगा न जा सके।

उस नगर में यमजिह्वा नाम की एक प्रसिद्ध कुट्टनी रहती थी। रत्नवर्मा ने जब उसके घर में प्रवेश किया तो वह अपनी लड़की को पढ़ा रही थी—"बेटी! हर किसी का धन के कारण सम्मान होता है, खास कर वेश्याओं का। वेश्याओं को चाहिये कि वे सचमुच किसी के प्रेमपाश में न फँसें, बल्कि एक सुशिक्षित नटी की भाँति सदा कृत्रिम प्रेम का प्रदर्शन करती रहे। पहले उन्हें पुरुषों का रंजन करना चाहिये, फिर उनके रक्त का शोषण करना चाहिये और फिर उनकी धन-सम्पत्ति का। वेश्याओं को युवक, बालक, वृद्ध, रूपवान और कुरूप सबके प्रति समान भाव रखना चाहिये।"

रत्नवर्मा को घर आया देख यमजिह्वा ने उसका स्वागत किया। रत्नवर्मा ने कहा—"वेश्याओं की कला में यदि तुम मेरे पुत्र को कुशल बना दो तो मै तुम्हें एक हजार दीनार से पुरस्कृत करूँगा।"

यमजिह्वा ने स्वीकृति दे दी। रत्नवर्मा अपने पुत्र को उसके पास छोड़कर चला आया।

ईश्वरवर्मा ने कलाओ की शिक्षा प्राप्त करने में बहुत परिश्रम किया और एक वर्ष के अन्दर उसने शिक्षा समाप्त कर ली।

घर लौटकर ईश्वरवर्मा ने अपने पिता से धन कमाने के लिये परदेश जाने की इच्छा प्रकट की। उसके पिता ने पाँच करोड़ का माल खरीद दिया और ईश्वरवर्मा स्वर्णद्वीप के लिये रवाना हो गया।

ईश्वरवर्मा कांचनपुर से गुजरा और नगर के बाहर एक उद्यान मे ठहर गया। वहाँ मन्दिर में नृत्य करती हुई एक नर्तकी को उसने देखा। उसे देखकर ईश्वरवर्मा का मन व्याकुल हो गया। कुट्टनी की शिक्षा का उसे जरा भी ध्यान न रहा।

नृत्य समाप्त हो जाने पर ईश्वरवर्मा ने अपने एक मित्र को उस नर्तकी के घर भेजा और उससे मिलने की इच्छा व्यक्त की।

नर्तकी का नाम मकरकटी था। ईश्वरवर्मा का उसने स्वागत किया। वासगृह में उसके लिये शय्या सजाई तथा ईश्वरवर्मा नृत्य और सूरत में कुशल मकरकटी के साथ क्रीड़ा करता हुआ समय बिताने लगा।

दो दिन के अन्दर ही ईश्वरवर्मा ने अनेक कीमती रत्न और सोना-चाँदी मकरकटी को भेट चढ़ा दिये। इतना धन पाकर वह कहने लगी—"हे नाथ! धन तो मुझे बहुत मिला है, लेकिन आप जैसा आदमी आज तक नहीं मिला। अब आप मिल गये हैं इसलिये मुझे धन की भी आवश्यकता नहीं।" फिर कहने लगी—"आपके गुणो से मैं इतनी प्रभावित हूँ कि अपना सारा धन आपके हवाले करती हूँ।" ईश्वरवर्मा अपने भोले स्वभाव के कारण मकरकटी की बातो में आ गया तथा उसके रूप और

नृत्य-गीत से आकृष्ट होकर उसने वहाँ दो महीने और गुजार दिये। इस बीच में ईश्वरवर्मा ने मकरकटी को दो करोड़ रुपये की भेंट चढ़ा दी।

इस समय ईश्वरवर्मा का मित्र अर्थदत्त वहाँ आया और अपने मित्र से कहने लगा—"हे मित्र ! इतने प्रयत्न के बाद सीखी हुई तेरी कुट्टनी-शिक्षा क्या व्यर्थ ही चली गई जो तू एक बाजारू औरत से प्रेम करने लगा है ? तू भूल गया कि मृगमरीचिका की भाँति वेश्याओं का प्रेम कभी सच्चा नहीं होता। उनका सच्चा प्रेम तो तुझे कभी मिल ही नहीं सकता, उल्टे तू अपना सारा धन खो बैठा है। अब भी तू सोच-समझकर यहाँ से चला जा।"

ईश्वरवर्मा ने उत्तर दिया—"यह ठीक है कि वेश्याओं का विश्वास नहीं करना चाहिये, लेकिन मकरकटी ऐसी नहीं है। यदि एक क्षण के लिये भी मैं इधर-उधर हो जाऊँ तो वह प्राण दे देने के लिये तैयार हो जाती है। फिर भी यदि तुम्हारी इच्छा है कि मै यहाँ न रहूँ तो तुम मकरकटी से बात कर लो।"

अर्थदत्त ने मकरकटी को समझाते हुए कहा—"मुझे मालूम है कि ईश्वरवर्मा से तुम बहुत प्रेम करती हो, लेकिन वह व्यापार के लिये स्वर्णद्वीप जाना चाहता है, इसलिये तुम इसे जाने दो। वहाँ से धन कमाकर यह तुम्हारे पास ही लौटेगा और फिर तुम चाहे जब तक इसे अपने पास रखना।"

यह सुनकर मकरकटी आँखो में आँसू भर कर बोली—"मैं तो नहीं चाहती कि ईश्वरवर्मा मेरे पास से एक क्षण के लिये भी दूर हो लेकिन होनहार कैसे मिट सकती है ?" अपनी लड़की को दुखी देखकर मकरकटी की माँ उसे धीरज बँधाती हुई कहने लगी—"बेटी ! तू दुखी क्यो होती है ? तेरा यह प्रेमी ऐसा नहीं जो वापस लौटकर न आये। यह जरूर वापस आयेगा।"

जैसे-जैसे ईश्वरवर्मा के जाने का दिन नजदीक आता गया, वैसे-वैसे उसकी खुराक कम होती गई। उधर मकरकटी गीत, नृत्य आदि द्वारा उसे लुभाकर उसका मन अधिक आकृष्ट करने लगी। ईश्वरवर्मा भी अपना अतिशय प्रणय दिखाकर अपनी प्रेमिका को आश्वासन देता रहा।

आखिर एक दिन ईश्वरवर्मा के प्रस्थान का मुहूर्त आ पहुँचा। मंगलाचार किये गये और कुशलपूर्वक लौट आने के लिये देवी-देवताओं की मनौती की गई। मकरकटी और उसकी माँ आँखों में आँसू भर कर ईश्वरवर्मा को बिदा करने के लिये पीछे-पीछे चलीं।

नगर के बाहर एक कुआँ था। इस कुएँ के पास पहुँचकर ईश्वर-वर्मा मकरकटी से अन्तिम बिदा लेने के लिये उसकी ओर बढ़ा तो वह झट से कुएँ में कूद पड़ी।

मकरकटी के कुँए में गिरते ही उसकी माँ, दासी और नौकर-चाकर, जोर-जोर से रोने लगे। ईश्वरवर्मा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

मकरकटी की माँ ने फौरन ही अपने नौकरों को कुएँ में उतारा। उन्होंने मकरकटी को बाहर निकाल लिया। कुएँ से निकलकर वह मृतक के समान पड़ी रही।

ईश्वरवर्मा की मूर्च्छा टूटी तो उसे विश्वास हो गया कि मकरकटी का प्रेम जन्म-जन्मान्तर का प्रेम है। उसने परदेश-यात्रा का विचार छोड़ दिया और वह अपनी प्रेमिका के घर रहने लगा।

अर्थदत्त ने देखा कि बना बनाया खेल बिगड़ गया। उसने फिर अपने मित्र को समझाते हुए कहा—"मित्र ! मोह के कारण अन्धे न बनो। मकरकटी के कुएँ में गिर पड़ने से तुम्हें यह न समझना चाहिये कि वह तुमसे बहुत प्रेम करती है। तुम नहीं जानते कुट्टनियों की कूट रचना ब्रह्मा की भी समझ में नहीं आती। फिर तुम्हारे पिताजी तुम्हारे बारे में क्या सोचेंगे ? इसलिये यदि तुम अभी भी अपना भला चाहो तो उसके कूटपाश में से निकल भागो।"

लेकिन ईश्वरवर्मा पर इन बातो का कोई असर न हुआ। उसने वहाँ और एक महीने रहकर तीन करोड़ पर पानी फेर दिया।

ईश्वरवर्मा जब खुक्ख हो गया तो मकरकटी की माँ ने उसे अर्ध-चन्द्र देकर घर से निकाल दिया।

अर्थदत्त ने चित्रकूट पहुँचकर रत्नवर्मा से सब हाल कहा।

रत्नवर्मा बड़ा दुखी हुआ। यमजिह्वा के पास जाकर उसने उसे डॉट लगाई और कहा कि क्या मेरे पुत्र को तुमने यही शिक्षा दी थी कि उसका सारा धन एक साधारण सी वेश्या हड़प ले।

यमजिह्वा ने रत्नवर्मा को ढाढ़स बँधाते हुए उत्तर दिया—"आप चिन्ता न करे, मकरकटी से मैं आपका धन दिलवा दूँगी।"

रत्नवर्मा ने अर्थदत्त को भेजकर अपने पुत्र को काचनपुर से बुल-वाया। अर्थदत्त ने ईश्वरवर्मा को उसके पिता का सन्देश देते हुए कहा—"देखो मित्र! मैने तुम्हे कितना समझाया लेकिन मेरी बात पर तुमने जरा भी ध्यान नहीं दिया। अब तुमने वेश्याओं के प्रेम का प्रत्यक्ष अनु-भव कर लिया है। पॉच करोड़ पानी की तरह बहा देने पर भी आखिर तुम्हें क्या मिला? केवल अर्धचन्द्र! अब तुम सोच सकते हो कि जैसे बालू मे तेल नहीं निकल सकता, वैसे ही वेश्याओ से कभी प्रेम नहीं मिल सकता; लेकिन मित्र! इसमें तुम्हारा क्या दोष? जब तक कोई नारियो के प्रेमपूर्ण हावभावो का शिकार नहीं होता तभी तक ठीक है। खैर, जो कुछ हुआ उसे भूल जाओ अब तुम अपने पिताजी के पास चलो।"

अर्थदत्त ईश्वरवर्मा को समझाकर काचनपुर से ले आया। पिता ने उसे सांत्वना दी और उसे वह यमजिह्वा के पास लेकर आया।

अर्थदत्त ने यमजिह्वा से आद्योपात सारा वृत्तांत कह दिया। यम-जिह्वा ने कहा—"सेठ जी! इसमें मेरा ही दोष है जो मैने ईश्वरवर्मा को इस माया की शिक्षा नहीं दी। देखिये, मकरकटी की माँ ने पहले से

ही कुएँ में एक जाल बाँध दिया था जिससे मकरकटी कुएँ में गिरकर भी जिन्दा रह सकी।"

यमजिह्वा आल नाम के एक बन्दर को वहाँ लेकर आई। उसने बन्दर के सामने एक हजार दीनारें रखकर उन्हें निगल जाने को कहा। बन्दर निगल गया। फिर उसे आदेश दिया कि इनमें से वह एक आदमी को बीस, दूसरे को पच्चीस, तीसरे को साठ और चौथे को सौ दीनारें दे दे। अपनी मालकिन का आदेश पाकर बन्दर मुँह में से दीनारें निकाल-निकाल कर देने लगा।

यमजिह्वा ने ईश्वरवर्मा से उस बन्दर को मकरकटी के घर ले जाने को कहा।

ईश्वरवर्मा बन्दर लेकर कांचनपुर के लिये रवाना हो गया। उसके पिता ने उसे दो करोड़ का माल खरीद दिया।

अपने मित्र के साथ ईश्वरवर्मा ने मकरकटी के घर में प्रवेश किया। मकरकटी ने अपने प्रेमी को साधनों से सम्पन्न देख आलिंगन आदि द्वारा उसका स्वागत किया। ईश्वरवर्मा ने अपने मित्र से कहकर बन्दर को भी वहाँ मँगवा लिया।

ईश्वरवर्मा ने बन्दर को आदेश दिया—"देखो, अभी खाने-पीने के लिये तीन सौ दीनारें निकाल कर दो, सौ मकरकटी की माँ को दो, सौ ब्राह्मणों को दो और हजार में जो बाकी बची हो उन्हें मकरकटी को दे दो।" आदेशानुसार बन्दर मुँह में से दीनारें निकाल कर देता गया।

इस तरह पन्द्रह दिन तक रोज ईश्वरवर्मा बन्दर से दीनारें दिलवाता रहा।

बन्दर की अद्भुत करामात देख मकरकटी और उसकी माँ ने सोचा—"यह बन्दर तो सचमुच चिन्तामणि है जो मुँहमाँगा धन उगलता है। यदि यह किसी युक्ति से हमें मिल सके तो कितना अच्छा हो।"

१४ : सिंहलद्वीप की रानी रत्नवती

रत्नपुर नगर में रत्नशेखर नाम का राजा राज्य करता था। उसके महामन्त्री का नाम मतिसागर था।

एक बार की बात है, राजा ने रत्नवती नाम की किसी राजकुमारी के रूपलावण्य की प्रशंसा सुनी और वह उसे पाने के लिये व्याकुल रहने लगा। महामन्त्री ने राजा को बहुत समझाया कि महाराज राजकुमारी का निवासस्थान आदि जाने बिना उसका प्राप्त करना असंभव है, लेकिन राजा ने एक न सुनी। मन्त्री ने देखा कि राजा अपनी हठ छोड़ने को तैयार नहीं है तो उसने सात महीने के अन्दर-अन्दर रत्नवती का पता लगाकर लाने का वादा किया।

एक दिन मौका पाकर मकरकटी ने अपनी माँ की मौजूदगी में ईश्वरवर्मा से उस बन्दर को माँगा। ईश्वरवर्मा ने कहा—"यह बन्दर मेरे पिताजी का है, इसे मैं कैसे दे सकता हूँ ?" मकरकटी ने उसके बदले पाँच करोड़ देने को कहा। ईश्वरवर्मा ने कहा—"तुम अपना सर्वस्व भी दो तो भी मै इसे नहीं दे सकता।" मकरकटी बड़ी निराश हुई। वह ईश्वरवर्मा के पाँवों में गिर कर अनुनय-विनय करने लगी। ईश्वरवर्मा ने बन्दर उसे दे दिया।

बन्दर पाकर मकरकटी बड़ी प्रसन्न हुई। ईश्वरवर्मा उस दिन वहीं रहा।

अगले दिन सुबह के समय ईश्वरवर्मा ने गुप्तरूप से दो हजार दीनारें बन्दर को निगलवा दीं। फिर बन्दर को वहीं छोड़ उसकी कीमत ले स्वर्ण द्वीप के लिये रवाना हो गया।

मकरकटी को वह बन्दर दो दिन तक हजार-हजार दीनारें देता रहा। तीसरे दिन बार-बार माँगने पर भी उसके मुँह में से एक भी दीनार नहीं निकली तो मकरकटी उसे पीटने लगी। बन्दर ने भी गुस्से में आकर अपने दाँतो और नाखूनो से मकरकटी और उसकी माँ का मुँह नोच डाला। उन्होने बन्दर को इतना मारा कि उसकी जान निकल गई।

मकरकटी ने तो कुएँ में जाल लगाकर ईश्वरवर्मा का थोड़ा-सा ही धन हरण किया था, लेकिन यमजिह्वा ने बन्दर की सहायता से उसका सब कुछ हर लिया।

तीसरा भाग

१४ : सिंहलद्वीप की रानी रत्नवती

रत्नपुर नगर में रत्नशेखर नाम का राजा राज्य करता था। उसके महामन्त्री का नाम मतिसागर था।

एक बार की बात है, राजा ने रत्नवती नाम की किसी राजकुमारी के रूपलावण्य की प्रशंसा सुनी और वह उसे पाने के लिये व्याकुल रहने लगा। महामन्त्री ने राजा को बहुत समझाया कि महाराज राजकुमारी का निवासस्थान आदि जाने बिना उसका प्राप्त करना असंभव है, लेकिन राजा ने एक न सुनी। मन्त्री ने देखा कि राजा अपनी हठ छोड़ने को तैयार नहीं है तो उसने सात महीने के अन्दर-अन्दर रत्नवती का पता लगाकर लाने का वादा किया।

राजकुमारी—लेकिन पुरुष तो पाप-पुण्य कुछ भी नहीं गिनते, शीलवती नारियों का वे शील हरण कर लेते हैं, दयामय धर्म को ग्रहण नहीं करते और धर्मात्मा पुरुषों का नाम लेते ही खीझ जाते हैं।

महामन्त्री—नारी सैकड़ों कूट-कपट स्वयं करती है और दूसरों से कराती है, वह सदा अपनी सचाई जताती है। रूढ़ियों से सदैव चिपटी रहती है, लकीर की फकीर बनी रहती है और नीच की संगत से अपना धर्म छोड़ देती हैं।

राजकुमारी—लेकिन पुरुष तो मर्मभेदी खोटे वचन बोलते हैं, धर्म का तत्व उनकी समझ में नहीं आता, कुलस्त्रियों को वे दूषित करते हैं और उन्हें कुल्टा कहकर उन पर दोषारोपण करते हैं, ऐसे पुरुष अपना मनुष्य जीवन व्यर्थ ही गँवा देते हैं।

वाद-विवाद को बढ़ता हुआ देख राजा ने महामन्त्री को रोका।

जयपुर के राजा को पता लगा कि रत्नपुर का राजा कामदेव के मन्दिर में आया हुआ है तो उसने सम्मानपूर्वक उसका स्वागत किया और उसके साथ राजकुमारी का विवाह कर दिया।

रत्नवती को साथ लेकर रत्नशेखर अपने देश लौट गया। नगर-वासियों ने बड़ी धूमधाम से उसका स्वागत किया।

एक बार की बात है, कलिंग देश के राजा ने रत्नपुर पर चढ़ाई कर दी। सामन्तों ने भयभीत होकर यह समाचार रत्नशेखर को सुनाया तो उसने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उसने कहा आज मेरा उप-वास है, तुम लोगों को आज के दिन ऐसी अधर्म की बात नहीं करनी चाहिये।

लेकिन शत्रु के सिपाही नगर में घुस आये और उपद्रव मचाने लगे। वे राजा के घोड़ों को खोलकर ले गये तो नगरवासियों में कोलाहल मच गया। नगर के सम्मान्य व्यक्तियों ने राजा के पास उपस्थित होकर भयभीत मन से यह समाचार सुनाया, फिर भी राजा पर कोई असर

न हुआ। युद्ध की ओर से राजा की उदासीनता देखकर उसके योद्धाओं ने खूब डटकर लड़ाई लड़ी जिससे शत्रु-सेना परास्त होकर भाग गई।

रत्नशेखर की भाँति रानी रत्नावती भी अपना अधिकांश समय धर्मकार्य में ही बिताने लगी।

एक बार की बात है, रत्नवती का उपवास था। राजा ने उससे सम्भोग की सामग्री तैयार करने को कहा। लेकिन रत्नवती ने उत्तर दिया—"आज के दिन ऐसी अधर्म की बात करना आपको शोभा नहीं देता।"

दूसरी बार ऐसा संयोग हुआ कि राजा ने उपवास कर रखा रत्नवती ऋतुस्नान करके रात्रि के समय राजा के र राजा ने कहा—"आज के पवित्र दिन अधर्म की बात करना ठीक नहीं।"

सुबह पता लगा कि रानी महावत के साथ भाग गई है।

मतिसागर रत्नवती की खोज मे चल पड़ा। रास्ते में उसे पता लगा कि सिंहलद्वीप में जयपुर नाम का एक नगर है जहाँ रूप और गुणों की खान रत्नवती निवास करती है।

मतिसागर सिंहलद्वीप के लिये रवाना हो गया। जयपुर पहुँचकर उसने जोगिनी का रूप बनाया और रत्नवती के भवन मे प्रवेश किया। राजकुमारी के सौन्दर्य को देखकर मतिसागर विस्मित हो गया। कुशल-वार्ता के पश्चात् राजकुमारी ने जोगिनी के निवासस्थान के बारे में पूछा। जोगिनी ने उत्तर दिया—

"कायारूपी नगरी मे हंसरूपी राजा वास करता है, वहाँ पवनरूपी नगर-रक्षक है। उस नगरी मे जोगी रहता है जो जोग का विचार करता है। एक मण्डली में पाँच जने हैं छठा चाण्डाल है। निकालने से भी वह नहीं निकलता, उसने बड़ा घोटाला मचा रखा है।"

रत्नवती ने जोगिनी से अपने घर के सम्बन्ध में प्रश्न किया। जोगिनी ने माया से ध्यान लगाकर उत्तर दिया—"इस नगर के कामदेव-मन्दिर मे जूआ खेलता हुआ जो कोई वहाँ तुम्हारे प्रवेश को रोकेगा वही तुम्हारा वर होगा।"

जोगिनी रूपधारी महामन्त्री कुछ दिन ठहरकर अपने देश लौट गया।

सात महीने पूरे होने को आये थे। आज आखिरी दिन था। महामंत्री को लौटा हुआ न देख राजा अग्नि मे प्रवेश करने की तैयारी कर रहा था कि इतने में मतिसागर पहुँच गया।

मतिसागर ने सिंहलद्वीप की राजकुमारी का वर्णन किया जिसे सुनकर राजा मतिसागर के साथ फौरन ही सिंहलद्वीप के लिये रवाना हो गया।

जयपुर पहुँचकर राजा अपने महामन्त्री के साथ कामदेव-मन्दिर में जूआ खेलने लगा।

राजकुमारी अपनी सखियों के साथ मन्दिर में पूजा करने आई। मन्दिर के भीतर कुछ पुरुषों को देखकर रत्नवती की दासी ने उनसे कहा—"देखिये, हमारी स्वामिनी किसी पुरुष का मुँह बिना देखे यहाँ कामदेव की पूजा करेंगी; इसलिये आप लोग मन्दिर के बाहर चले जाइये।" महामन्त्री ने उत्तर दिया—"हमारा राजा रत्नशेखर बहुत दूर से चलकर आया है। वह यहाँ जूआ खेल रहा है। किसी नारी मुँह वह नहीं देखता, इसलिये अपनी स्वामिनी से कहो कि अभी मन्दिर में प्रवेश न करे।"

दासी ने यह बात राजकुमारी से कही। यह सुनते ही राजकुमारी को तुरत ही जोगिनी के वचनों का स्मरण हो आया। उसकी बायीं आँख फरकने लगी और बड़े हर्षपूर्वक उसने मन्दिर में प्रवेश किया।

राजकुमारी को देखते ही महामन्त्री ने अपने वस्त्र से राजा का मुँह ढँक दिया। रत्नवती के प्रश्न करने पर उसने उत्तर दिया—"हमारा राजा नारियों का मुँह नहीं देखता।" रत्नवती ने पूछा—"नारियों ने ऐसा कौन-सा पाप किया है?" मन्त्री ने कहा—

"नारियों के सम्बन्ध में कितना कोई कहे?" वे कितना कूट-कपट करती हैं, सौगन्ध खाकर झूठ बोलती है और बेर की गुठली जितना भी उन्हें बात का ज्ञान नहीं।"

राजकुमारी ने उत्तर दिया—

"लेकिन धन, स्वामित्व, मद और यौवन से उद्धत बने पुरुष पाप ही पाप करते हैं, अपने माता-पिता, भाई-बन्धु और अपने गुरुजनों तक को वे कुछ नहीं समझते।"

महामन्त्री—जो बात न कथा में है, न पोथी-पुराण में और न देवी-देवताओं में ही प्रसिद्ध है, और जो बात किसी को नहीं सूझती वह निष्ठुर बोल पिशाची नारी बोलती है।

राजकुमारी—लेकिन पुरुष तो पाप-पुण्य कुछ भी नहीं गिनते, शीलवती नारियों का वे शील हरण कर लेते हैं, दयामय धर्म को ग्रहण नहीं करते और धर्मात्मा पुरुषों का नाम लेते ही खीझ जाते हैं।

महामन्त्री—नारी सैकड़ों कूट-कपट स्वयं करती है और दूसरों से कराती है, वह सदा अपनी सचाई जताती है। रूढ़ियों से सदैव चिपटी रहती है, लकीर की फकीर बनी रहती है और नीच की संगत से अपना धर्म छोड़ देती हैं।

राजकुमारी—लेकिन पुरुष तो मर्मभेदी खोटे वचन बोलते हैं, धर्म का तत्व उनकी समझ में नहीं आता, कुलस्त्रियों को वे दूषित करते हैं और उन्हें कुलटा कहकर उन पर दोषारोपण करते है, ऐसे पुरुष अपना मनुष्य जीवन व्यर्थ ही गँवा देते हैं।

वाद-विवाद को बढ़ता हुआ देख राजा ने महामन्त्री को रोका।

जयपुर के राजा को पता लगा कि रत्नपुर का राजा कामदेव के मन्दिर में आया हुआ है तो उसने सम्मानपूर्वक उसका स्वागत किया और उसके साथ राजकुमारी का विवाह कर दिया।

रत्नवती को साथ लेकर रत्नशेखर अपने देश लौट गया। नगर-वासियों ने बड़ी धूमधाम से उसका स्वागत किया।

एक बार की बात है, कलिंग देश के राजा ने रत्नपुर पर चढ़ाई कर दी। सामन्तों ने भयभीत होकर यह समाचार रत्नशेखर को सुनाया तो उसने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उसने कहा आज मेरा उप-वास है, तुम लोगों को आज के दिन ऐसी अधर्म की बात नहीं करनी चाहिये।

लेकिन शत्रु के सिपाही नगर में घुस आये और उपद्रव मचाने लगे। वे राजा के घोड़ों को खोलकर ले गये तो नगरवासियो में कोलाहल मच गया। नगर के सम्मान्य व्यक्तियों ने राजा के पास उपस्थित होकर भयभीत मन से यह समाचार सुनाया, फिर भी राजा पर कोई असर

न हुआ। युद्ध की ओर से राजा की उदासीनता देखकर उसके योद्धाओं ने खूब डटकर लड़ाई लड़ी जिससे शत्रु-सेना परास्त होकर भाग गई।

रत्नशेखर की भाँति रानी रत्नावती भी अपना अधिकांश समय धर्मकार्य मे ही बिताने लगी।

एक बार की बात है, रत्नवती का उपवास था। राजा ने उससे सम्भोग की सामग्री तैयार करने को कहा। लेकिन रत्नवती ने उत्तर दिया—"आज के दिन ऐसी अधर्म की बात करना आपको शोभा नहीं देता।"

दूसरी बार ऐसा संयोग हुआ कि राजा ने उपवास कर रखा रत्नवती ऋतुस्नान करके रात्रि के समय राजा के र राजा ने कहा—"आज के पवित्र दिन अधर्म की बात करना ठीक नहीं।"

सुबह पता लगा कि रानी महावत के साथ भाग गई है।

१५ : दो बहुमूल्य उपदेश

गजपुर नगर में यशधवल नाम का कोई सेठ रहता था। यशदेवी उसकी भार्या थी।

एक दिन यशदेवी ने अपने पति से कहा—"प्राणनाथ! विपुल धनराशि के होते हुए भी यदि कोई बालक माँ की गोदी में नहीं खेलता तो उसका जन्म निरर्थक है।"

यशधवल ने शासनदेवी की मनौती की और देवी ने साक्षात् प्रकट होकर उसे वरदान दिया। कुछ समय बीतने पर यशदेवी ने गर्भ धारण किया और उसके एक पुत्र हुआ। पुत्र का नाम धर्मदत्त रखा गया।

धर्मदत्त जब आठ वर्ष का हुआ तो उसने विविध कलाओं का अध्ययन किया। युवा होने पर तिहुणदेवी नाम की एक सेठ की कन्या से उसका पाणिग्रहण हो गया।

एक दिन धर्मदत्त ने अपने पिता से निवेदन किया—"पिताजी! जो अपने बाप-दादाओं की लक्ष्मी का उपभोग करता है उसे निर्लज्जों

का शिरोमणि ही कहना चाहिये और जो अपनी भुजाओं से लक्ष्मी का उपार्जन कर उसे परोपकार में लगाता है, ऐसे पुरुष से पृथ्वी अपने को सनाथ समझती है। अतएव हे तात ! परदेश जाकर धन का अर्जन करने की मेरी बड़ी अभिलाषा है, आप उसे पूर्ण करें।"

यशधवल ने कहा—"बेटा ! घर से बाहर पाँव रखने में कष्ट ही कष्ट भोगने पड़ते हैं, इसलिये परदेश जाने का विचार छोड़ दे।"

धर्मदत्त ने उत्तर दिया—"पिताजी ! अपने भुजबल से उपार्जित धन का ही मैं उपभोग करना चाहता हूँ, आप मुझे न रोकें।"

अपने पुत्र का आग्रह देख यशधवल ने उसे अनुमति देते हुए कहा—"बेटा ! यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो तुम जा सकते हो, लेकिन याद रखना कि परदेश में कभी भोले बनकर, कभी होशियार बनकर, कभी चुप रहकर, कभी जोर से बोलकर, कभी निर्धन बनकर, कभी धन का जोर दिखाकर, कभी डर कर, कभी निर्भय रहकर, कभी गुस्सा करके, कभी गुस्से को पीकर, कभी लज्जित होकर और कभी निर्लज्ज बनकर काम निकालना पडता है, इसका तुम हमेशा ध्यान रखना।"

धर्मदत्त ने मस्तक झुकाकर पिता की शिक्षा को स्वीकार किया। कुछ दिन बाद तिहुणदेवी को साथ लेकर वह परदेश के लिये प्रस्थान कर गया।

रास्ते मे माल बेचता और खरीदता हुआ धर्मदत्त आगे बढ़ा। कुछ दूर जाने पर उसे कूट नाम का एक ब्राह्मण मिला। दोनो ने साथ-साथ पारसकूल (ईरान) के लिये प्रस्थान किया।

धर्मदत्त ने कूट से कहा—"पण्डित जी ! कोई सुन्दर आख्यान सुनाइये जिससे रात अच्छी तरह कट जाय।"

कूट ने उत्तर दिया—"सेठ जी ! मैं कोई अपने अनुभव की बात आपको सुनाऊँगा, लेकिन आपको पाँच सौ रुपये देने होंगे।"

धर्मदत्त ने सोचा—"पता नहीं यह ब्राह्मण कौन-सी बात सुनायेगा जो इतना पैसा माँगता है। इसकी बात जरूर सुननी चाहिये। धन का क्या, वह तो फिर कमाया जा सकता है।"

धर्मदत्त ने पाँच सौ रुपये ब्राह्मण को दे दिये। उसने कहा—"तो सुनिये—नीच आदमी की संगति कभी न करनी चाहिये।"

धर्मदत्त ने हँसकर कहा—"बस तुम्हारी बात पूरी हो गयी। तुमने नाहक ही इतना पैसा माँग लिया।"

ब्राह्मण ने कहा—"सेठ जी! देखिये अभी तो दूसरी बात इससे भी बढ़कर है, लेकिन उसके लिये एक हजार खर्च करने पड़ेंगे।"

धर्मदत्त ने सोचा—"इसकी दूसरी बात भी जरूर सुननी चाहिये, शायद कभी काम ही आ जाय।"

धर्मदत्त ने हजार रुपये निकाल कर रख दिये। ब्राह्मण ने कहा—"सुनिये—महिलाओं का विश्वास कभी न करना चाहिये।"

फिर वह बोला कि यदि ये दोनों बातें आप गाँठ बाँध लें तो जीवन में कभी दुख नहीं पायेंगे।

धर्मदत्त हर्ष-विषाद-युक्त मन से घूमता-घामता पारसकूल में पहुँचा। जब ब्राह्मण जाने लगा तो धर्मदत्त ने उसका पता-ठिकाना पूछा। ब्राह्मण ने पता-ठिकाना बता दिया और कोई काम पड़ने पर याद करने के लिये कहा।

जाते हुए ब्राह्मण ने धर्मदत्त को मन्त्र से अभिषिक्त मुट्ठी भर जौ दिये और कहा कि बोते के साथ ही इन पर बाल लग जायँगी।

नगर में पहुँचकर रत्नों की थाल भरकर धर्मदत्त राजा के दरबार में उपस्थित हुआ। राजा ने भेंट स्वीकार कर ली और धर्मदत्त का कर माफ कर दिया।

धर्मदत्त ने माल का लेन-देन किया और थोड़े ही समय में उसने लाखों कमा लिये।

धर्मदत्त के घर के पास गंगदत्त नाम का एक विट रहता था। धीरे-धीरे उसने धर्मदत्त से मित्रता कर ली। धर्मदत्त के घर वह आने-जाने लगा। कितनी ही बार धर्मदत्त के न होने पर भी वह उसके घर जाता और उसकी स्त्री से हँसी-मजाक करता। स्त्री भी भोजन आदि से उसकी खातिर करती।

गंगदत्त और तिहुणदेवी का प्रेम बढ़ता गया, यहाँ तक कि गंगदत्त मन ही मन धर्मदत्त से ईर्ष्या करने लगा।

एक दिन धर्मदत्त राज-दरबार मे गया और राजा को प्रणाम करके बैठ गया। गंगदत्त भी वहाँ बैठा था।

राजा ने धर्मदत्त से प्रश्न किया—"सेठजी! आप देश-विदेश मे इतना घूमते-फिरते हैं, कहीं कोई आश्चर्य देखा या सुना हो तो कहिये।"

धर्मदत्त ने उत्तर दिया—"महाराज! आश्चर्य के लिये कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं, मेरे खुद के पास ऐसे जौ हैं जो बोते ही फल जाते है।"

इस बीच में गंगदत्त बोल उठा—"महाराज! यह सब झूठ है। धर्मदत्त समझता है कि इसके पास धन है तो यह कुछ भी गप मार सकता है। यदि अपनी बात को यह सच करके बता दे तो मैं अपनी सारी सम्पत्ति इसे दे दूँ। और यदि कहीं इसकी बात झूठ निकली तो मेरे हाथों मे इसके घर का जो कुछ आ जाय उसे मैं ले लूँगा।"

राजा के सामने यह शर्त मान ली गई।

गगदत्त ने तिहुणदेवी के पास पहुँचकर उससे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तिहुणदेवी ने कहा—"हाँ, ऐसे जौ हम लोगो के घर मे है जो बोते ही फल जाते हैं। लेकिन तुमने तो इस शर्त में अपना सब कुछ लगा दिया, अतएव ये जौ तुम्हारे ही पास रहने चाहिये।" यह कहकर उसने अभिषिक्त जौ गगदत्त को दे दिये। फिर वह कहने लगी—"देखो,

तुम्हारे जीत जाने पर तुम अपने दोनों हाथों से मुझे उठाकर ले जाना और फिर हम दोनों आनन्दपूर्वक रहेंगे।"

दूसरे दिन धर्मदत्त जौ लेकर राज-दरबार में पहुँचा। राजा का आदेश पाकर उसने जौ को मिट्टी में डालकर ऊपर से पानी छिड़क दिया, लेकिन वे ज्यों के त्यों पडे रहे। यह देखकर धर्मदत्त बड़ा शर्मिन्दा हुआ।

वह सोचने लगा कि कहीं उस ब्राह्मण ने तो नहीं ठग लिया।

गंगदत्त मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहा—"सेठ जी ! अब जो कोई भी वस्तु मेरे दोनों हाथों म आवेगी उसे मैं न छोड़ूँगा।"

धर्मदत्त बड़ा उदास हुआ। कूट ब्राह्मण के घर पहुँचकर सारा हाल कहा।

ब्राह्मण ने कहा—"देखिये, जो शिक्षा मैंने आपको दी थी उसे आपने भुला दिया। मैंने दो बातें बताई थीं—एक तो यह कि नीच की सगत नहीं करनी चाहिये और दूसरी यह कि महिलाओं का विश्वास नहीं करना चाहिये। आप दोनों को भूल गये। आपका वह पड़ोसी चिट नीच है और स्त्री चरित्रहीन। उसने असली जौ उठाकर उनकी जगह नकली रख दिये हैं।"

धर्मदत्त ने कहा—"पण्डित जी ! ऐसी बात न कहिये। मेरी स्त्री शीलवती है और मुझसे वह स्नेह करती है।"

ब्राह्मण ने उत्तर दिया—"महिलाओं के चरित को आप नहीं समझते, इसलिये ऐसी बातें करते हैं। मैं आपको यह बात प्रत्यक्ष करके दिखा दूँगा।"

धर्मदत्त ब्राह्मण और राजा को लेकर अपने घर आया।

ब्राह्मण ने धर्मदत्त से कहा—"देखिये, आपकी औरत माळे पर चढ़ी है, आप जल्दी से सीढ़ी हटा लें।" इसके बाद राजा की मौजूदगी में

उसने गंगदत्त को बुलाकर कहा कि यहाँ जो तुम्हारे हाथों में आये, तुम ले लो।

ब्राह्मण सतृष्ण नेत्रों से सेठ के बहुमूल्य धन की ओर देखता रहा, तिहुणदेवी उसे दिखाई न दी। इस समय माले पर तिहुणदेवी के खाँसने की आवाज आई जिसे सुनकर गंगदत्त उसकी ओर जल्दी से दौड़ा। लेकिन माले पर चढ़ने की सीढी वहाँ नहीं थी। वह झट से अपने दोनों हाथों से सीढी उठाकर माले पर लगाने लगा। इतने में ब्राह्मण ने गंगदत्त को रोक कर कहा—"देखो जी गंगदत्त! अब इस सीढ़ी को तुम ले लो। तुम कहते थे कि जो चीज तुम्हारे दोनों हाथों में आ जायगी, वह तुम्हारी हो जायगी, अब यह सीढ़ी तुम्हारी है।"

गंगदत्त लज्जित होकर जमीन की ओर देखने लगा।

राजा की समझ में कुछ न आया। शंकित मन से उसने गंगदत्त से पूछा—"गंगदत्त! इतने माल-असबाब को छोड़कर तुमने एक सीढ़ी ही क्यों ली?"

पहले तो गंगदत्त शर्म के मारे कुछ न बोला। बाद में उसने सारा हाल सुना दिया।

राजा ने गंगदत्त को देशनिकाला दे दिया।

ब्राह्मण धर्मदत्त से कहने लगा—"दुःख है कि पन्द्रह सौ रुपये पढ़ाई में खर्च करके भी आप पंडित न बन सके।"

१६ : जो खोजे सो पावै

मथुरा नगरी में जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पटरानी का नाम धारिणी था।

एक बार की बात है, राजा अपनी पटरानी के साथ भण्डीरवन की यात्रा के लिए गया। उस समय किसी बनिये को परदे के छेद में से आभूषणों से सजा और महावर लगा रानी के पैर का अँगूठा दिखाई दिया। उसने सोचा, जब इसका अँगूठा इतना सुन्दर है तो यह स्वयं कितनी सुन्दर होगी।

बनिये को पता लगा कि वह राजा की पटरानी है। उसे पाने के लिये वह जुगत भिड़ाने लगा।

राजा के महल के पास उसने गंधी की एक दूकान खोल ली और इत्र, फुलेल बेचने लगा। राजमहल की दासियाँ उसकी दूकान पर सामान लेने आया करतीं। बनिया उनका मान करता और कितनी ही बार उन्हें अधिक सामान दे देता। दासियाँ अन्तःपुर मे जाकर बनिये की प्रशंसा करतीं।

इन दासियों मे प्रियंकरा नाम की एक दासी थी। बनिये ने प्रियंकरा से पूछा कि इन पुड़ियाओं को सबसे पहले कौन खोलता है ? प्रियंकरा ने पटरानी का नाम लिया।

एक दिन बनिये से सुगन्धित वस्तुओं की पुड़िया के साथ एक प्रेमपत्र भी बाँध दिया और प्रियंकरा से उसे पटरानी को देने के लिये कहा।

पटरानी ने पुड़िया खोली तो उसमें लिखा था—

काले प्रसुप्तस्य जनार्दनस्य, मेघान्ध कारासु च शर्वरीषु।
मिथ्या न भाषा मि विशालनेत्रे ते प्रत्यया ये प्रथमाक्षरेषु॥

—काल में कृष्ण के सोते हुए, रात्रि के मेघ के अधकार से व्याप्त होने पर, हे विशालनेत्रे ! मै झूठ नहीं बोलता, इस श्लोक के प्रत्येक पद के प्रथम अक्षरो में तेरा विश्वास है (अर्थात् कामेमि—मैं तुझसे प्रेम करता हूँ)।

पत्र पढ़कर पटरानी ने निम्नलिखित उत्तर दिया—

नेह लोके सुख किञ्चिच्छादितस्यांहसा भृशम्।
मितं च जीवितं नृणां तेन धर्मे मतिं कुरू॥

—पाप से भरे हुए इस लोक में कहीं भी सुख नहीं और मनुष्यों का जीवन अल्प है, इसलिये हे मूर्ख ! धर्म मे मन लगा (श्लोक के चारों पदों के प्रथम अक्षर मिलाने से 'नेच्छामि' रूप बनता है, अर्थात् मैं तुझे नहीं चाहती)।

पत्र का उत्तर पढ़कर बनिये को बड़ी निराशा हुई। गुस्सा होकर उसने अपने घर के बर्तन-भॉड़े फोड़ दिये, कपड़े फाड़ डाले और नगर छोड़कर चल दिया।

चलते-चलते रास्ते में एक मठ आया जहाँ कोई आचार्य विद्यार्थियों को नीतिशास्त्र की शिक्षा दे रहे थे। आचार्य जिनदत्त नाम के वणिक्‌पुत्र की कहानी सुना रहे थे। जिसे बनिया वहीं बैठकर सुनने लगा।

वसन्तपुर में जिनदत्त नाम का एक वणिक् पुत्र रहता था। एक बार की बात है, व्यापार करने के लिये वह चम्पा गया। यहाँ धन नाम का एक व्यापारी रहता था जिसकी कन्या का नाम हारप्रभा था। हारप्रभा के अनुपम रूप-लावण्य को देखकर जिनदत्त उसे पाने का प्रयत्न करने लगा।

उस समय तो जिनदत्त अपने घर लौट गया लेकिन कुछ दिनों बाद गुप्त वेष बनाकर वह फिर चम्पा आया। विद्यार्थी बनकर वह धन के घर गया और उससे भोजन का प्रबन्ध करने की प्रार्थना की।

धन ने अपनी कन्या को उसकी देखरेख के लिये नियुक्त कर दिया। जिनदत्त प्रसन्न हुआ। उसने सोचा—"यह तो ऐसा ही हुआ जैसे बिल्ली को मांस का टुकड़ा मिल गया हो, भूखे को किसी ने भोजन दे दिया हो, दाल में घी डाल दिया गया हो, बन्दर को किसी फल-फूलवाले बगीचे में छोड़ दिया गया हो और किसी कुशल युवक को कुलटाओं के बीच रख दिया गया हो।"

जिनदत्त ने धीरे-धीरे हारप्रभा से परिचय बढ़ाया। उसने हारप्रभा के लिये फल-फूल आदि भेजे, लेकिन हारप्रभा ने लेने से इनकार कर दिया। फिर, कभी वह हारप्रभा के कहे अनुसार काम करके, कभी उसके इशारे पर चलकर, कभी अनुनय-विनय करके, कभी अवसर-प्राप्त बात करके, कभी कौशल दिखाकर, कभी सुभाषित पढ़कर, कभी गोष्ठी करके, कभी उसके परिजनों का मन रिझाकर, कभी बड़प्पन दिखाकर और कभी कामकथा कहकर उसे रंजित करने लगा। कहा भी है—

"विद्याविहीन, अकुलीन और प्रशंसा के अयोग्य होते हुए भी जो मनुष्य पास होता है, राजा उसी से काम लेता है। इसी प्रकार स्त्रियाँ और लतायें भी जो कोई उनके पास होता है, उसे ही वे वेष्टित कर लेती है।"

जिनदत्त से प्रसन्न होकर एक दिन हारप्रभा ने पूछा—"बोलो, तुम्हारे लिये क्या करूँ ?" जिनदत्त ने कहा—"जब तुम प्रसन्न होओगी तब बताऊँगा ।" हारप्रभा ने उत्तर दिया—"मै प्रसन्न हूँ, बोलो क्या चाहते हो ?" जिनदत्त ने कहा—"यदि ऐसी बात है तो अपने सगमरूपी जल से मेरे तप्त शरीर को शान्त करो ।"

यह सुनकर हारप्रभा ने एक गाथा पढ़ी—

हसियं तुह हरइ मणं, रमियंपि विसेसओ न संदेहो ।
मयरद्धउ व्व निवडइ, मंतू वि तुमाओ वित्थरिओ ॥

—मेरा हँसना तुम्हे प्रिय है और मेरे साथ रमण करना तुम्हें विशेष रूप से प्रिय है, इसमें कोई सन्देह नहीं । तुमसे बढ़ा हुआ मेरा क्रोध भी कामदेव के समान नष्ट हो जाता है । अर्थात् 'हर ममं' मुझे हरण करके ले जा ।

गाथा सुनकर जिनदत्त ने सोचा कि क्या इस तरह किसी की कन्या को हरण कर लेना ठीक है ? लोग क्या कहेंगे ?

उसने एक युक्ति सोची । हारप्रभा से उसने कहा—"तू पागल बन जा और मै वैद्य बनता हूँ ।"

हारप्रभा उल्टा-सीधा बकने लगी । उसके परिवार के लोगो को बड़ी चिन्ता हुई । मन्त्र के जाननेवाले बुलाये गये, लेकिन कोई लाभ न हुआ । फिर भूत उतारनेवाले ओझाओं को बुलाया । उन्होंने मण्डल बनाकर उस पर हारप्रभा को बैठाया । मंत्रपाठ होने लगे; लेकिन जैसे-जैसे मंत्रो का पाठ होता, हारप्रभा के शरीर में कामदेव का भूत और उग्ररूप धारण करता । यह देखकर ओझाओं ने कहा—

"यह किसी महाभूत से पीड़ित जान पड़ती है । इसे किसी महा-वैद्य को दिखाना चाहिये ।"

लेकिन जब कोई महावैद्य भी हारप्रभा को अच्छा न कर सका तो

धन ने जिनदत्त को उसकी सहायता करने को कहा। जिनदत्त ने कहा—"कोशिश करूँगा।"

एक दिन हारप्रभा अपनी सखियों के साथ बैठी हुई थी। जिनदत्त ने उसका भूत उतारने के लिये उसके शरीर का स्पर्श किया। लेकिन जैसे-जैसे जिनदत्त के हाथ का स्पर्श होता वैसे-वैसे उसका कामज्वर और चढ़ता।

यह देखकर जिनदत्त ने हारप्रभा के पिता से कहा—"यह तो किसी महाग्रह से पीड़ित जान पड़ती है, कोई समर्थ तांत्रिक ही इसे अच्छा कर सकता है। वैसे तो मेरे पास भी भूत उतारने की परम्परागत विद्या है, लेकिन इसके लिये आठ शुद्ध ब्रह्मचारियों की आवश्यकता है, जिनका मिलना अति कठिन है।"

किसी तरह ब्रह्मचारियों का प्रबन्ध किया गया। कृष्ण चतुर्दशी को आधी रात के समय सब लोग श्मशान पहुँचे। जिनदत्त ने एक मण्डल बनाया, अग्नि जलाई और आठ साधुओं के हाथ में तलवार दे, उन्हे आठों दिशाओं में बैठा दिया। जिनदत्त ने आदेश दिया—"मेरे मण्डल में प्रवेश करते ही तुम लोग गीदड़ी की बोली बोलना।" फिर साधुओं के सामने आठ धनुर्धारी खड़े करके उनसे कहा—"गीदड़ी का शब्द सुनते ही तुम लोग बाण चलाना।"

इस प्रकार आदेश देकर जिनदत्त ने मण्डल में प्रवेश किया। सामने उसने हारप्रभा को बैठा दिया। फिर उसके 'हुँ फट्' कहते ही गीदड़ी जैसा शब्द सुन पड़ा। शब्द सुनते ही धनुर्धारियों ने बाण चलाये जिनके लगते ही साधु वहाँ से भाग गये। जिनदत्त गिर पड़ा। बना-बनाया काम बिगड़ गया। थोड़ी देर बाद जिनदत्त ने उठकर कहा—"देखिये, मैंने पहले ही कहा था कि शुद्ध ब्रह्मचारियो का मिलना कठिन है।"

फिर से ब्रह्मचारियों की खोज की गई। अबकी बार दूसरे साधुओं को बुलाया गया। पहले की भाँति सब विधियाँ की गईं। हारप्रभा

चिल्लाकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। सगे-सम्बन्धी उसका शरीर दबाने लगे। हारप्रभा का भूत उतर गया। नींद से जागे हुए किसी आदमी की भाँति अपने पिता से वह पूछने लगी—"आप लोग यह सब क्या जादू-टोना कर रहे हैं?" उसके सम्बन्धियों ने सब वृत्तान्त सुना दिया।

हारप्रभा के स्वस्थ हो जाने पर धन की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। जिनदत्त के प्रति उसने कृतज्ञता प्रकट की और उसके साथ हार-प्रभा का विवाह कर दिया।

आचार्य से नीतिशास्त्र का यह दृष्टान्त सुनकर बनिया सोचने लगा—"जो खोजता है वह पाता है, इसलिये निराश होने की जरूरत नहीं।" उसने अपने नगर को लौट कर साम, दाम, दण्ड और भेद नीति का प्रयोग करके तथा परिव्राजिकाओं और दूतियों की सहायता से राजा से सम्बन्ध जोड़ कर, विद्यासिद्ध पुरुषों की सेवा कर तथा वशी-करण और मन्त्र-तन्त्र की शिक्षा प्राप्त कर पटरानी को प्राप्त करने का पक्का इरादा कर लिया।

किसी तंत्र विद्या जाननेवाले चाण्डाल के पास पहुँचकर बनिये ने कहा—"तुम किसी भी तरह राजा की पटरानी को लाओ।"

चांडाल ने अपनी विद्या के बल से नगर में बच्चों की बीमारी फैला दी जिससे बच्चे मरने लगे। राजा को बड़ी चिन्ता हुई। पूछताछ करने पर राजा को पता लगा कि उसके अन्तःपुर में स्त्री-रूपधारी मारी निवास करती है और वह बच्चों को मारकर खा जाती है।

एक दिन प्रातःकाल राजा ने धारिणी के बिस्तर पर बच्चों के कटे हुए हाथ-पाँवों के टुकड़े देखे। राजा समझ गया कि इस महा-रानी के रूप में ही मारी रहती है। महारानी के पास पहुँचकर राजा ने उससे कहा—"अरी दुष्टे! यह तू क्या करती है?" लेकिन महारानी ने इन सब बातों के प्रति अपनी अज्ञानता ही बताई।

राजा ने चांडालों से पूछा—"अब क्या करना चाहिये ?" उन्होंने उत्तर दिया—"नियम के अनुसार उसे मार डालना चाहिये।"

महारानी चाण्डालो के सुपुर्द कर दी गई। आधी रात के समय वे उसे श्मशान ले गये। उधर से वह बनिया भी आ पहुँचा। चाण्डालों से उसने पूछा—"यह क्या है ?" उन्होने कहा—"यह मारी है, इसे हम मारने लाये हैं।"

"यह आप लोग क्या कर रहे है ? ऐसी सौम्य स्त्री कभी मारी फैला सकती है ?"

"तुम इस बात को क्या समझो ?"

"इसे मत मारो। मैं रुपये देता हूँ। इसे छोड़ दो।"

"हम तो इससे छुटकारा चाहते ही हैं।"

"चाहो तो इसकी जगह मुझे मार डालो, लेकिन इसे छोड़ दो।"

"इसे बिना मारे हम नहीं छोड़ सकते।"

"लेकिन इसके बिना मैं जीवित कैसे रहूँगा ?"

"तू भी कैसा आदमी है जो विघ्न डालने आ गया ! यदि तुझे यह इतनी प्यारी है तो एक करोड़ दीनार निकाल कर रख।"

बनिया राजी हो गया।

पटरानी उसे मिल गई।

●

१७ : पराई लक्ष्मी का उपभोग

कौशांबी नगर में धनदत्त नाम का एक व्यापारी रहता था। उसकी स्त्री का नाम नन्दा था। नन्दा के सुन्दरी नाम की एक रूपवती कन्या थी।

सुन्दरी जवान हुई और यशोवर्धन नाम के एक वणिक् पुत्र से उसका विवाह हो गया। लेकिन यशोवर्धन बड़ा कुरूप था। उसकी आँखें धँसी हुईं, दाँत निकले हुए, नाक चपटी, गाल पिचके हुए और गर्दन लम्बी थी, इसलिये वह जरा भी सुन्दरी के मन नहीं मानता था। लेकिन सुन्दरी अपने कुल के अंकुश से भयभीत थी, इसलिये लाचार थी।

एक बार की बात है, यशोवर्धन ने बहुत-सा माल भर कर धन कमाने के लिये परदेश जाने का इरादा किया। वह चाहता था कि सुन्दरी भी

साथ चले। लेकिन सुन्दरी तो उसके नाम से घृणा करती थी। उसने कहा—"मेरे पेट में दर्द रहता है, रात को मछली की भाँति तड़पती हूँ, इतनी दूर की यात्रा कैसे करूँगी?"

यशोवर्धन जहाज में माल भरकर रवाना हो गया।

यशोवर्धन के चले जाने पर उसके पिता ने सोचा—"अपने भर्ता के बिना औरत का रहना ठीक नहीं। यदि यह कोई अनुचित काम कर बैठे और इसे रोका जाय तो इसे बुरा लगेगा। यशोवर्धन को भी दुख होगा। फिर इसकी तबीयत भी ठीक नहीं रहती, इसलिये क्यों न इसे इसके पीहर भेज दिया जाय।"

यशोवर्धन के पिता ने सुन्दरी के पिता के पास खबर भिजवा दी और वह अपनी कन्या को लिवा ले गया।

सुन्दरी अपने घर के ऊपर के चौबारे में रहने लगी।

एक दिन खिड़की में खड़ी हुई दर्पण के सामने वह कंघी कर रही थी। इतने में तोसली नाम का एक राजकुमार वहाँ से गुजरा। दोनों की नजरें मिलीं। सुन्दरी को देखकर राजकुमार ने एक सुभाषित पढ़ा।

"जिस स्त्री के अनुरूप गुण और यौवनवाला पुरुष नहीं उसके जीने से क्या लाभ? उसे तो मुर्दे के समान समझना चाहिये।"

सुन्दरी ने उत्तर दिया—

"पुण्यहीन पुरुष प्राप्त हुई लक्ष्मी का उपभोग करना नहीं जानता। पराक्रमी पुरुष ही पराई लक्ष्मी का उपभोग कर सकता है।"

तोसलिकुमार सुभाषित का अभिप्राय समझकर चला गया।

संध्या के समय सुन्दरी की नौकरानी पुष्प, ताम्बूल आदि रखकर चली गई। सुन्दरी ने दरवाजा बन्द कर लिया और खिड़की खुली छोड़कर वह लेट गई।

कुछ रात बीतने पर राजकुमार ने खिड़की में से प्रवेश किया और पीछे से आकर सुन्दरी की आँखें मींच लीं। सुन्दरी ने श्लोक पढ़ा—

"तू क्या नहीं जानता कि तू मेरे हृदय को चुराकर ले गया था और अब आँखे मींचने के बहाने तू सचमुच अँधेरा कर रहा है। आज मैं अपने बाहुपाश को बेखटके तेरे गले में डाल रही हूँ। या तो तू अपने इष्टदेव को स्मरण कर, नहीं तो पुरुषार्थ दिखा।"

इस प्रकार कथाओ के विनोद से रातभर दोनो मे प्रेमपूर्ण वार्तालाप होता रहा।

सुबह होने पर राजकुमार अपने स्थान को लौट गया। सुन्दरी भी दिन चढ़े तक सोती रही। नौकरानी दातून लेकर आई। उसने देखा कि सुन्दरी बेखबर सोई पड़ी है। वह सोचने लगी, जिस स्त्री का पति परदेश गया है उसके लिये इतनी देर तक सोते रहना अच्छा नहीं, वह वहीं बैठ गई।

सुन्दरी के उठने पर दोनो मे बातचीत होने लगी—

"स्वामिनि! इतनी देर तक आप क्यो सोती रहीं?"

"प्रियतम के वियोग में रात भर नींद नहीं आई। सवेरा होते-होते अभी आँख लगी थी।"

"आपके होठो मे यह क्या हो गया है, मालकिन?"

"सर्दी से फट गये है।"

"आपकी आँखो का काजल क्यो फैल गया है?"

"प्रियतम के वियोग में रात भर रोती रही।"

"तोते की चोंच जैसे ये नखचिह्न आपके शरीर में कैसे कहाँ से आये?"

"पति के वियोग मे मैने अपने आपका गाढ़ आलिगन किया है?"

"तो अब मै आपके पास सोया करूँगी जिससे हम एक दूसरे का आलिंगन कर सकें।"

"छिः छिः! पतिव्रता स्त्री के लिए यह उचित नहीं है।"

"स्वामिनि! और आपके केशो का यह जूड़ा क्यो खुल गया है?"

"बहिन ! तू बड़ी चालाक जान पड़ती है जो इस तरह के सवाल कर रही है। अरी कलमुँही ! प्रियतम के बिना शय्या गर्म-गर्म बालू के समान लगती है, इसलिये सारी रात करवट बदलते हुए मेरा जूड़ा खुल गया है। इस तरह सवाल पूछकर क्या तू मेरे ससुर के खानदान को दाग लगाना चाहती है ?"

"छिः छिः स्वामिनि ! यह आप क्या कह रही हैं। इससे आपके ससुर के खानदान में दाग नहीं लगेगी उल्टे वह उज्ज्वल ही होगा।"

रात के समय राजकुमार वहाँ फिर आया। सुन्दरी ने कहा—"यदि मुझे चाहते हो तो चलो कहीं भाग चलें। भेद खुल गया है। मेरा ससुर राजा को खबर देगा और राजा हम लोगों पर कड़ी निगरानी रखेगा।"

तोसलिकुमार ने दो तेज घोड़े मँगवाये। एक पर सुन्दरी बैठी, दूसरे पर राजकुमार। घोड़ों पर सवार होकर दोनों किसी अज्ञात स्थान की ओर प्रस्थान कर गये।

●

१८ : धूर्तराज मूलदेव

एक बार मूलदेव और कंडरीक नाम के धूर्त कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने बैलगाड़ी में अपनी तरुण पत्नी के साथ आते हुए एक युवक को देखा। तरुणी को देखकर कडरीक का मन चंचल हो उठा। उसने मूलदेव को इशारा किया। मूलदेव ने उत्तर दिया—"चिन्ता की कोई बात नहीं है, थोड़ी देर ठहर जाओ।"

मूलदेव ने कडरीक को वृक्षों के एक झुरमुट में छिपा दिया और स्वयं रास्ते मे आकर खड़ा हो गया। जब बैलगाड़ी नजदीक आई तो मूलदेव ने युवक से कहा—"देखिये, मेरी पत्नी वृक्षों के झुरमुट में लेटी है, उसके बच्चा होनेवाला है। वह अकेली है, यदि थोड़ी देर के लिए अपनी पत्नी को उसकी मदद के लिये भेज दे तो बड़ी कृपा हो।"

युवक ने स्वीकृति दे दी। फिर 'जैसे कोई लता पास के आम अथवा नीम का आश्रय पाकर उसके ऊपर चढ़ जाती है, वैसे ही स्त्रियाँ भी अपने पास आये हुए पुरुष की इच्छा करने लगती है' इस नियम के

अनुसार वृक्षों के झुरमुट में कंडरीक को पाकर तरुणी ने उसका आश्रय ग्रहण किया। फिर मूलदेव के सामने आकर हँसती हुई वह कहने लगी—"हे प्रिय ! तुम्हे बधाई है, तुम्हारे पुत्र हुआ है।" उसके बाद मूलदेव की पगड़ी उतार कर अपने पति को लक्ष्य करके उसने एक दोहा पढ़ा—

खड़ी गड्डी बइल्ल तुहुं, बेटा जाया तॉंह।
रण्णि वि हुँते मिलावडा मित्त सहाया जाँह॥

(तुम्हारी गाड़ी और बैल खड़े हुए है। उसके बेटा हुआ है। जिनके मित्र सहायक होते है उनका जंगल मे भी मिलाप हो जाता है।)

१९ : शंब का साहस

शंब कृष्ण और जांबवती का लाडला बेटा था। वह बहुत नटखट था और जिससे देखो छेड़खानी किया करता था।

एक दिन जांबवती ने कृष्ण से कहा—"प्राणनाथ! बहुत दिन से अपने लाडले की कोई करामात नहीं देखी।" कृष्ण ने कहा—"अच्छी बात है।"

कृष्ण और जांबवती ने ग्वाला और ग्वालिन का वेश बनाया और दोनो दही की मटकी सिर पर रखकर द्वारका मे दही बेचने लगे।

ग्वालिन को दही बेचते देख शंब ने पूछा—"क्या बेचती हो?"

ग्वालिन ने कहा—"दही।"

शंब ने कहा—"आओ, मुझे दही मोल लेना है।"

ग्वालिन शंब के पीछे-पीछे चल दी।

कुछ दूर जाने पर शंब मंदिर में घुस गया। ग्वालिन को भी उसने अन्दर बुलाया।

ग्वालिन ने अन्दर जाने से इनकार कर दिया और पहले पैसे देने को कहा।

शंब ने कहा—"तू पहले अंदर आ, फिर पैसे मिलेंगे।"

ग्वालिन ने उत्तर दिया—"यहीं से दही लेना हो तो लो, अन्दर न आऊँगी।"

शंब ने कहा—"अन्दर कैसे न आओगी, आना पड़ेगा।"

यह कहकर ग्वालिन का हाथ पकड़ शंब ने उसे अन्दर ले जाना चाहा कि इतने में ग्वाला कूदकर वहाँ आ पहुँचा। ग्वालिन का हाथ पकड़कर वह शंब से कहने लगा—"खबरदार, जो इसे कुछ कहा।"

शंब और ग्वाले में झडप होने लगी।

इस समय ग्वाला और ग्वालिन अपने असली रूप में प्रकट हो गये। शंब अपने माता-पिता को सामने देख लज्जा से गड़ गया।

वह उन्हें अँगूठा दिखाकर भाग गया। सारे दिन वह घर के अन्दर पड़ा रहा, शर्म से बाहर न निकला।

दूसरे दिन उठकर वह जमीन में कील गाड़ने लगा।

कृष्ण ने पूछा—"बेटा ! क्या कर रहे हो ?"

शंब ने उत्तर दिया—"पिताजी ! एक कील बना रहा हूँ, उसके मुँह में ठोकने के लिये जो उस दिन की बात किसी से कहेगा।"
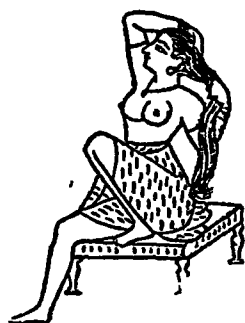
२० : विश्वासपात्र कौन ?

वाराणसी नगरी में कमलश्रेष्ठी नाम का एक वणिक् रहता था। उसके पद्मिनी नाम की एक सुंदर कन्या थी। वह इतनी गुणवती थी कि उसके माता-पिता एक क्षण के लिये भी उसका वियोग सहन नहीं कर सकते थे।

एक बार चंदन नाम का कोई निर्धन वणिक् वहाँ आया। कमलश्रेष्ठी ने उसे पसन्द कर लिया और पद्मिनी के साथ उसका विवाह कर दिया।

चन्दन कमलश्रेष्ठी का घर जमाई बनकर रहने लगा। वह शीघ्र ही सारे घर का मालिक बन गया।

पद्मिनी के कोई संतान न थी इसलिये वह स्वच्छंद भाव से चाहे जहाँ आती-जाती। वह साज-शृंगार करती और नौजवानों की संगत में समय बिताती। बाहर वह इच्छानुसार रमण करती लेकिन घर आते ही महासती बनकर बैठ जाती। उसकी चालाकी देखकर बड़े-बड़े धूर्तराज भी दाँतों तले उँगली दबाते।

बहुत दिनों बाद पद्मिनी के एक पुत्र हुआ। लेकिन वह उसे दूध न पिलाती। पति के पूछने पर कहती—"मैंने बचपन से ही पर पुरुष के स्पर्श न करने का नियम ले रखा है।"

चंदन ने सोचा—"मेरी पत्नी कितनी शीलवती है जो अपने पुत्र तक का स्पर्श नहीं करती।"

एक बार की बात है, चंदन अपनी दुकान पर बैठा हुआ था। इतने में चंदन लगाये सुंदर वस्त्रधारी एक तरुण ब्राह्मण वहाँ से गुजरा। हाथ में वह दर्भ लिये था और मार्ग को जल से सींच रहा था। लोग उसे धर्मात्मा समझकर प्रणाम करते और वह दोनों हाथ उठाकर आशीर्वाद देता।

चंदन अपनी दुकान पर धान बेच रहा था कि एक तिनका उड़कर ब्राह्मण के सिर में लग गया। चंदन उस तिनके को हटाने लगा।

ब्राह्मण ने कहा—"आप जरा ठहर जाइये, मैं अपने सिर को ही धड़ से उड़ा दूँगा क्योंकि इसने चोरी की है। मैं कभी किसी के साथ अन्याय नहीं करता, इसलिये अपने इस सिर को मुझे दण्ड देना ही होगा।" यह कहकर ब्राह्मण अपने सिर पर छुरी चलाने को तैयार हो गया। चंदन ने बड़ी मुश्किल से उसे रोका।

चन्दन ब्राह्मण की सच्चाई और ईमानदारी को देखकर प्रभावित हुआ। अपने घर ले जाकर उसने भोजन, ताम्बूल आदि से ब्राह्मण का सत्कार किया।

चन्दन ने ब्राह्मण को अपने घर रख लिया। एक बार की बात है, चन्दन ने परदेश जाकर धन कमाने का इरादा किया। उसने यह बात ब्राह्मण से कही और उसके पीछे घर की रखवाली करने का अनुरोध किया। पहले तो ब्राह्मण ने यह कहकर बात टाल दी कि वह इस झंझट में नहीं पड़ना चाहता, लेकिन चन्दन के बहुत कहने पर उसने वहाँ रहना स्वीकार कर लिया।

चन्दन माल-असबाब लेकर पाटलिपुत्र के लिये रवाना हो गया।

पाटलिपुत्र पहुँचकर नगर के बाहर उसने पड़ाव डाला। एक दिन उसने देखा कि पेड़ पर चेष्टाविहीन एक पक्षी बैठा हुआ है। उस पेड़ के पक्षी जब अपना दाना-पानी लेने चले जाते तो यह चुपके से उनके घोसलो में पहुँचता और अण्डो-बच्चों को खाकर फिर से उसी तरह चुपचाप बैठ जाता।

पास ही में भुजा लटकाये एक साधु खड़ा होकर ध्यान कर रहा था। वहाँ एक राजकुमारी आई। साधु ने उसे उपदेश दिया, फिर उसके गले का कीमती हार निकाल कर उसे गड्ढे में मार कर फेंक दिया। वह साधु फिर उसी तरह ध्यान में लीन हो गया।

उधर राजमहल मे राजकुमारी के लौटकर न आने से सारे महल में ढूँढ़ मच गई। राजा ने नगर में डोडी पिटवा दी कि जो कोई राजकुमारी का पता देगा उसे एक हजार रुपये इनाम मिलेंगे।

चन्दन के नौकर ने साधु को राजकुमारी की हत्या करते हुए देख लिया था। उसने यह सूचना राजा को दी। राजा ने साधु को प्राणदण्ड की आज्ञा सुनाई।

वह देखकर चन्दन सोचने लगा—"जैसा यह ढोंगी पक्षी है और दम्भी साधु है, वैसी ही कहीं मेरी पत्नी और मेरे घर में रहनेवाला ब्राह्मण तो नहीं ?"

यह सोचकर जल्दी से जल्दी घर पहुँचने के लिये उसका मन व्याकुल हो उठा। अपना सब माल बेचकर वह तुरत ही चल पड़ा।

नगर मे पहुँचकर आधी रात के समय उसने अपने घर में प्रवेश किया। दीपक जलाकर खिड़की में से देखा तो उसकी पत्नी और ब्राह्मण दोनो एक साथ खाट पर सो रहे थे। यह देखकर वह आश्चर्य में डूब गया। उसने एक श्लोक पढ़ा—

वालेना चुंविता नारी ब्राह्मणो शीर्षहिंसकः।
काष्ठीभूतो वने पक्षी जीवानां रक्षको व्रती ॥
आश्चर्याणीह चत्वारि मयापि निजलोचनैः।
दृष्टान्यहो ततः कस्मिन् विश्रब्धं क्रियतां मनः ॥

—नारी बालक का चुम्बन नहीं करती, ब्राह्मण अपना सिर काट डालने को तैयार है, वन में पक्षी काठ की नाईं निश्चेष्ट बैठा हुआ है और जीवदया को पालनेवाला साधु ध्यान में मग्न है। ये चारों आश्चर्य मैंने अपनी आँखों से देखे है। तब बताओ विश्वासपात्र किसे कहा जाय?

पद्मिनी ने अपने पति की आवाज पहचान ली। ब्राह्मण जल्दी से उठकर भागना ही चाहता था कि चन्दन ने उसे पकड़ लिया।

●

२१ : नूपुरपण्डिता की परीक्षा

वसन्तपुर नगर में जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। कोई धनी व्यापारी भी इस नगर मे रहता था।

एक वार की वात है उसकी वहू नदी में नहाने गई। कोई नव-युवक उसके अनुपम रूप को देखकर सोचने लगा—"वह पुरुष भी कितना धन्य है जो इस सुन्दरी का उपभोग करता होगा।" फिर वणिक्-वधू को सम्बोधन करते हुए उसने कहा—

"मत्त हाथी की सूँड के समान उरुवाली हे पुत्रवधू ! प्रश्नकर्ता कह रहा है—यह नदी है, ये नदी के किनारे वृक्ष खड़े है, मैं तेरे पॉव पड़ता हूँ।"

वणिक्वधू ने उत्तर दिया—

"नदी सुन्दर हो, नदी-किनारे के वृक्ष वहुत समय तक जीवित रहे; प्रश्नकर्ता को अपना वनाने के लिये हम उसकी खोज कर रहे हैं।"

वहाँ कुछ बालक खेल रहे थे। नवयुवक ने उन्हें वृक्षों से फल तोड़कर दिये। बालकों ने वणिक्‌वधू का नाम और पता बता दिया। कहा भी है—

"बाला को अन्न-पान के द्वारा, युवती को आभूषणों द्वारा, वेश्या को परिचर्या द्वारा और वृद्धा को महान् सेवा द्वारा वश में करें।"

नवयुवक अपने घर लौट गया। किसी परिव्राजिका को प्रसन्न करके उसने उसे वणिक्‌वधू के पास भेजा।

परिव्राजिका वणिक्‌वधू के घर पहुँची तो वह कपड़े धो रही थी। परिव्राजिका को बैठने के लिये उसने आसन दिया। फिर पूछा—"आर्ये! क्या आपने कोई आश्चर्य देखा है? परिव्राजिका ने उत्तर दिया—"जो देखा है उसे तू शीघ्र ही पायेगी।"

"क्या वह कोई नौजवान है?"

"हाँ।"

"वह कैसा है?"

"उसके रूप-गुण का वर्णन कौन कर सकता है?"

"फिर भी कुछ तो बताइये।"

"देख, वह इसी नगर में रहता है। किसी सार्थवाह का पुत्र है। सुदर्शन उसका नाम है। समस्त कलाओं में कुशल है। वह अत्यन्त कुलीन, मेधावी, विनयी, रसिक, रूपवान् और दयालु है। वह सब गुणों की खान है और तुम्हारे लिये सब प्रकार से योग्य है।"

नौजवान के गुणों का वर्णन सुन वणिक्‌वधू मन ही मन बहुत प्रसन्न हुई। लेकिन उसने सोचा कि परिव्राजिका को बनाना चाहिये।

उसे अपना स्याही लगा हुआ हाथ का पंजा परिव्राजिका की पीठ पर जोर से मारा और गुस्से से कहने लगी—"अरी कुलवधुओं को पतन की ओर ले जानेवाली दुष्टे! मुझसे ऐसी बातें करते हुए तुझे शर्म नहीं आती?"

परिव्राजिका निराश होकर लौट गई। उसने अपनी पीठ पर लगे हुए पाँचों उँगलियों के निशान सुदर्शन को दिखाये। सुदर्शन समझ गया कि कृष्णपक्ष की पंचमी को उसने बुलाया है। लेकिन मिलने के स्थान का कोई संकेत नहीं मिल सका।

उसने फिर से परिव्राजिका को वणिक्‌वधू के पास भेजा।

परिव्राजिका को देखकर वणिक्‌वधू गुस्से से लाल-पीली होकर कहने लगी—"अरी ! तू फिर आ गई !"

उसने सोचा कि ठीक है, मैंने कोई संकेतस्थान नहीं बताया था, इसलिये यह आई है। उसके बाद अशोक वन में ले जाकर पहले की तरह उसने परिव्राजिका को भगा दिया।

परिव्राजिका ने लौटकर सुदर्शन से कहा—"बेटे ! वह तो तेरा नाम भी सुनना नहीं चाहती। अशोक वन मे ले जाकर उसने मुझे भगा दिया है।"

सुदर्शन समझ गया। कृष्ण पंचमी के दिन वह अशोक वन में पहुँचा। वणिक्‌वधू भी अपने पति को सुलाकर वहाँ आ गई।

उधर रात्रि के पिछले पहर में वणिक्‌वधू का बूढ़ा ससुर लघुशंका के लिये उठा तो उसने देखा कि उसकी पतोहू अपने पति को छोड़कर और किसी के पास जाकर सो गई है। लेकिन कहीं वह झूठा न ठहरा दिया जाय इसलिये वह अपनी पतोहू का एक नूपुर निकाल कर ले गया।

वणिक्‌वधू ने अपने प्रेमी को फौरन ही भाग जाने के लिये कहा।

वह जल्दी-जल्दी अपने पति के पास जाकर सो गई। थोड़ी देर बाद पति ने कहा—"यहाँ गर्मी लग रही है, चलो, अशोक वन में चलें।"

दोनों अशोक वन मे आ गये। कुछ देर बाद अपने सोते हुए पति को उठाकर बड़े आश्चर्य, विषाद और उपहासयुक्त मन से वह कहने

लगी—"आपके कुल में यह कैसा रिवाज है कि रात के समय अपने पति के साथ सोती हुई स्त्री के पैर से ससुर नूपुर निकाल लेता है ?"

पति ने कहा—"क्या यह सच है ?"

"क्या मेरा विश्वास नहीं ?"

"चिन्ता न करो, सुबह देखेंगे।"

"देखिये, मुझे अपने बिछुए की चिन्ता नहीं, लेकिन इस घटना से मैं बहुत लज्जित हूँ।"

सुबह होने पर ससुर ने अपने पुत्र को एकांत में ले जाकर कहा—"अरे! तेरी बहू तो बिगड़ गई है। यह देख, पर-पुरुष के साथ सोते हुए मैंने उसका यह बिछुआ निकाल लिया है।"

पुत्र ने कहा—"पिताजी! बुढ़ापे के कारण कहीं आपकी अकल तो नहीं सठिया गई ?"

पिता—क्या तू मुझे झूठा समझता है। मैंने खुद अपनी आँखों से देखा है।

पुत्र—तो क्या आप मुझे भी पराया समझते हैं ? आपको शर्म नहीं आती ?

इतने में बहू के रोने का शब्द सुनाई दिया। वह कह रही थी—"जब तक मेरे कलंक का परिहार नहीं हो जाता, मैं अन्न-जल ग्रहण न करूँगी।"

उसका रोना सुनकर बहुत से लोग इकट्ठे हो गये। नगर के वृद्ध-जनों ने कहा—"यदि ऐसी बात है तो यक्ष से इसकी परीक्षा करानी चाहिये।"

वणिक्‌वधू स्नान कर और वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो यक्षमंदिर में पहुँची।

खबर पाकर बहू का प्रेमी भी जैसे किसी ग्रह से पीड़ित हो, हाथ में

टूटा हुआ डंडा लिये, फटे कपड़े पहन, शरीर में भभूत रमा, पुरुषों को प्रणाम करता और स्त्रियों का आलिंगन करता हुआ वहाँ आ पहुँचा।

उसने वणिक्वधू के गले में हाथ डालकर जबर्दस्ती उसका आलिंगन किया। वणिक्वधू पर पुरुष का स्पर्श हो जाने से स्नान करने चली गई। लोगों ने उसे पागल समझ निकाल दिया।

वणिक्वधू ने यक्ष के सामने उपस्थित होकर घोषणा की—"अपने विवाहित पति को छोड़कर और ग्रह से पीड़ित इस आदमी को छोड़कर यदि और किसी पुरुष का मैने स्पर्श किया हो तो हे यक्ष! तू मुझे पकड़ ले।"

यह सुनकर यक्ष किंकर्तव्यविमूढ़ होकर सोचने लगा कि यह औरत भी कितनी चालाक मालूम होती है? इतने मे वह झट से यक्ष के नीचे से होकर निकल गई। चारों ओर साधुवाद का शब्द सुनाई देने लगा—"अरे! यह तो महासती है, इस पर कलंक लगाना अनुचित है।" उसके ससुर को बहुत शर्मिन्दा होना पड़ा।

ससुर ने सोचा—"देखो, यह कितनी छलिया है! यह सचमुच नूपुरपंडिता है! मेरे जैसे सत्यवादी को भी इसने झूठा ठहरा दिया।" इसी सोच-विचार में उसे रातभर नींद नहीं आई।

कुछ दिनों बाद राजा ने उसे अपने अन्तःपुर का रक्षक नियुक्त कर दिया।

एक बार की बात है, रात के दूसरे पहर मे अन्तःपुर की सब रानियाँ सो रही थीं, केवल एक जाग रही थी। उद्वेग के कारण उसे नींद नहीं आ रही थी। बूढ़े ने सोचा, जरूर इसमें कोई कारण होना चाहिये। वह झूठ-मूठ आँख मींचकर सो गया।

इसी समय एक बड़े छिद्र में हाथी की सूँड़ दिखाई दी और रानी उस पर बैठकर चल दी। थोड़ी देर बाद उसने किसी के संकल से पीटे जाने की आवाज सुनी। कोई डाँटकर कह रहा था—"तू इतनी देर में

क्यों आई ?" रानी उत्तर मे कह रही थी—"गुस्सा मत हो। एक बूढ़ा आज से कंचुकी बना दिया गया है, वह देर से सोता है।"

इसके बाद सबेरा होने पर हाथी की सूँड़ फिर उसे दिखाई दी और रानी महल में वापस आ गई।

बूढ़ा सोचने लगा—"दोनो कुलों से शुद्ध कही जानेवाली, राजा की सुरक्षित रानी भी जब इस तरह आचरण करती है तो फिर मेरी बहू की कौन बात ?"

बूढ़ा निश्चिन्त होकर सो गया। सूर्य का उदय होने पर भी जब वह न उठा तो नौकरो ने राजा से कहा। राजा ने उसे उठाने के लिये मना कर दिया।

सातवें दिन बूढ़ा स्वयं उठा। राजा ने इतने दिन तक सोते रहने का कारण पूछा। बूढ़े ने रात की बात राजा से कह दी। राजा ने पूछा—"क्या तुम बता सकते हो वह कौन-सी रानी थी ?" बूढ़े ने कहा—"यह बहुत मुश्किल है।"

राजा ने अपनी रानियों को हुकुम दिया—"मेरा पाप नाश करने के लिए तुम लोग एक-एक करके हाथी के बच्चे को लांघो।" राजा का आदेश पाकर सब रानियाँ तो लाँघ गई। केवल महारानी बच गई। उसने कहा—"मुझे डर लगता है।"

राजा समझ गया। उसने महारानी को कमल की नाल से खूब पिटवाया। मूर्च्छित होकर वह गिर पड़ी। उसके शरीर पर संकलों के निशान दिखाई दिये। राजा ने सुभाषित पढ़ा—

"आश्चर्य है जो मदोन्मत्त हाथी से नहीं डरती, उसे हाथी के छोटे-से बच्चे से डर लगता है! जो संकल से पीटी जाने पर भी मूर्च्छित नहीं होती वह कमलनाल की चोट खाकर मूर्च्छित हो जाती है!"

राजा ने रानी, महावत और हाथी तीनो के वध का हुकुम सुना दिया।

तीनों को एक पहाड़ के ऊपर ले गये। हाथी एक पैर से खड़ा हो गया। लोगों ने राजा से कहा—"इस बेचारे का क्या दोष? इस हस्तिरत्न को आप क्यो मारते हैं?"

राजा ने हाथी को वापस लौटाने का हुकुम दिया। लेकिन महावत ने कहा—"यदि आप हम दोनो को भी अभयदान दें तो इसे लौटा सकता हूँ।"

राजा ने स्वीकृति दे दी। हाथी की रक्षा हो गई। रानी और महावत को देशनिकाला दे दिया गया।

चलते-चलते संध्या के समय दोनो एक मंदिर मे ठहरे। वहाँ कुछ चोर पहले से छिपे हुए थे। पुलिस ने मंदिर के बगीचे को घेर रखा था।

मंदिर में सोते समय अंधेरे में रानी का हाथ चोर को लगा। रानी ने पूछा—"कौन?" उत्तर मिला—"चोर।" रानी ने कहा—"यदि तू मेरा स्वामी बनने को तैयार हो तो मै तुझे बचा सकती हूँ।" चोर ने मंजूर कर लिया।

सुबह होने पर पुलिस ने तीनों को पकड़ लिया।

महावत ने कहा—"मै चोर नहीं हूँ, तुमने गलती से मुझे पकड़ा है।"

चोर की ओर इशारा करते हुए रानी ने कहा—"देखिये, यह मेरा पति है," और महावत की ओर देखकर कहा—"यह चोर है।"

पुलिस ने महावत को पकड़ लिया। महावत सोचने लगा—"स्त्रियाँ भी कितनी विचित्र हैं! राजा को छोड़कर यह मेरे साथ आई और अब मुझे छोडकर चोर के साथ जा रही है!"

२२ : नागिनी का कपटजाल

जयपुर नगर में गंगदत्त नाम का एक सेठ रहता था। गंगिला उसकी भार्या का नाम था। उसके समस्त कलाओं में कुशल नागकुमार नाम का पुत्र था। युवा होने पर नागिनी नाम की एक वणिक् कन्या से उसका विवाह हो गया।

नागिनी बड़े कुटिल स्वभाव की थी। लेकिन ऊपर-ऊपर से वह अपने सास-ससुर और पति को प्रसन्न रखती। पति के बाहर से आने पर उसके पैरों का प्रक्षालन करती और बैठने के लिये उसे आसन देती। उसके भोजन कर लेने के बाद स्वयं भोजन करती। उसके सोने के बाद सोती और सबसे पहले जागती।

एक बार वसन्त ऋतु में सब लोग उद्यान में क्रीड़ा करने गये थे। नागकुमार उद्यान में पहुँचकर अपने मित्रों के साथ गेंद खेलने लगा। मदनलता नाम की गणिका भी वहाँ क्रीड़ा के लिये आई थी। उसे किसी विद्याधर ने उठाकर ले जाना चाहा, लेकिन नागकुमार ने उसे बचा लिया।

नागकुमार मदनलता के साथ उसके घर गया तो मदनलता की माँ ने नागकुमार का बहुत आदर-सत्कार किया। नागकुमार के प्रति उसने कृतज्ञता प्रकट की तथा अपना घर और सारी धन-दौलत उसके हवाले कर दी। मदनलता के आग्रह पर वह उसके घर में रहने लगा।

गंगदत्त को जब पता लगा कि उसका लड़का वेश्या के घर रहने लगा है तो उसे अच्छा न लगा। उसने नागकुमार को कहला भेजा—"बेटा! हम लोग वणिक् कुल मे पैदा हुए हैं, अपने हिताहित का विचार करनेवाले पुरुष को वेश्या-सेवन करना शोभा नहीं देता।" लेकिन नागकुमार ने उत्तर दिया—"यह वेश्या धन की माँग नहीं करती, अपनी कृतज्ञता के कारण मुझसे स्नेह करती है।"

कुछ समय बाद नागकुमार के माता-पिता परलोक सिधार गये। सास-ससुर के मर जाने पर नागिनी ने देखा कि उसका पति वेश्या के घर पड़ा रहता है तो वह भी स्वच्छन्द होकर पुरुषो के साथ घूमती हुई धन का व्यय करने लगी।

एक दिन नागिनी ने अपने पति से झूठमूठ कह दिया कि सब धन चोरी चला गया है। फिर कुछ दिनो बाद परदेश जाकर उससे धन कमाने का आग्रह करने लगी।

नागकुमार ने यह बात मदनलता से कही। मदनलता ने उत्तर दिया—"मालूम होता है तुम्हारी पत्नी किसी पुरुष से लगी है, नहीं तो वह तुम्हे परदेश जाने के लिये न कहती।" नागकुमार ने कहा—"ऐसा कभी नहीं हो सकता। मेरी स्त्री पतिव्रता है, परपुरुष का ध्यान वह मन में भी नहीं ला सकती।" मदनलता ने उत्तर दिया—"स्त्रियों के कूट-कपट को तुम नहीं जानते, इसलिये ऐसी बात करते हो।" यह कहकर मदनलता ने एक कहानी सुनाई—

× × ×

किसी नगर में मनोरथ नाम का कोई सेठ रहता था। वह बड़ा दयालु था। उसकी स्त्री का नाम लक्ष्मी था। चार पुत्रों के बाद उसके सुन्दरी नाम की एक कन्या हुई थी, इसलिये वह उसे बहुत प्यार करता था।

सुन्दरी के जवान होने पर बड़ी धूमधाम से उसकी शादी हो गई। दुर्भाग्य से शादी के बाद अपने पति से उसकी नहीं बनी और पति अपनी पत्नी से उदासीन रहने लगा।

पिता ने बेटी को समझाया—"बेटी! यह संसार ही ऐसा है, कर्म-गति के सामने किसी की कुछ नहीं चलती।" धीरे-धीरे सुन्दरी को भी आदत पड़ गई और वह घर के कामकाज में मन लगाती हुई समय बिताने लगी।

एक दिन सुन्दरी खिड़की में बैठी हुई थी। उसने रास्ते में जाते हुए एक सुन्दर राजपुत्र को देखा। दोनों की आँखें मिलीं। इतने में बंदिजन का शब्द सुनाई पड़ा—

"विजयलक्ष्मीयुक्त बंगदेश के राजा भुवनपाल के साथी कामपाल की जय हो जिसके अत्यन्त रमणीय रूप को देखकर देवांगनायें भी मर्त्यलोक की कामना करने लगती हैं।"

कामदेव के बाणों से घायल होकर सुन्दरी अस्वस्थ हो गई, और उधर कामपाल कामज्वर से पीडित हो अपने घर लौट गया।

एक दिन कोई परिव्राजिका मनोरथ सेठ के घर आई। सेठ ने अपनी कन्या की अस्वस्थता के प्रति चिन्ता व्यक्त की। परिव्राजिका ने सुन्दरी से अस्वस्थता का कारण पूछा तो उसने सच-सच बता दिया।

परिव्राजिका ने कहा—"रविवार के दिन यदि तू सूर्यमंदिर में सूर्य की पूजा करने जा सके तो मैं वहाँ राजपुत्र से तेरा मिलाप करा दूँगी।" फिर उसने अन्दर जाकर मनोरथ सेठ से कहा—"देखिये, कुछ तो आपकी

कन्या को मैंने अच्छा कर दिया है, और बाकी रविवार के दिन सूर्य की पूजा करने से वह ठीक हो जायगी।"

परिव्राजिका राजपुत्र के घर पहुँचकर उसके नौकरों-चाकरों से मिली। नौकरों ने अपने स्वामी की अस्वस्थता के समाचार सुनाये और उसे स्वस्थ करने की प्रार्थना की।

परिव्राजिका को राजपुत्र ने बताया कि मदनरूपी पिशाच से छले जाने के कारण उसकी यह दशा हुई है। परिव्राजिका ने कहा—"चिन्ता की कोई बात नहीं, रविवार के दिन सूर्यभवन में प्रवेशकर सूर्य की पूजा करने से सब बाधा शान्त हो जायगी।"

सुन्दरी अपने परिवार के साथ सूर्य की पूजा करने गई। पूजा करके वह घर लौट रही थी कि सूर्यभवन में प्रवेश करते हुए राजपुत्र ने उसे अपने आलिंगन-पाश में बाँध लिया। सुंदरी ने चिल्लाना शुरू किया—"अरे रे! इस पुरुष ने मुझे स्पर्श कर लिया है, अब अग्नि के बिना मेरी शुद्धि नहीं हो सकती।"

मनोरथ को बड़ी चिन्ता हुई। उसने अग्नि में प्रवेश करने से अपनी कन्या को रोका।

घर पहुँचकर सुदरी ने परिव्राजिका से राजपुत्र को वहाँ लाने का अनुरोध किया। राजपुत्र आ गया और दूसरी बार दोनो का मिलाप हुआ।

रात के समय परिव्राजिका वहीं सोई। सुंदरी ने सोचा, किसी तरह इसे भी ठगना चाहिये। सुन्दरी ने सोती हुई परिव्राजिका को कपड़े से ढँककर घर में आग लगा दी और वे दोनों वहाँ से भाग गये। राजपुत्र सुदरी को अपने घर ले गया।

घर में आग लग जाने पर सुंदरी के पिता को बडी चिन्ता हुई। उसने समझा कि उसकी कन्या और परिव्राजिका दोनो घर के अन्दर जलकर मर गई हैं। अपनी कन्या को संबोधन करके वह विलाप करने

लगा—"हे बेटी ! तू ने पर पुरुष द्वारा स्पर्श हो जाने से अग्नि में प्रवेश करना चाहा था, मैंने तुझे रोक लिया। अब तूने अग्नि में प्रवेश कर सचमुच मेरा मुँह उज्ज्वल किया है। तू कितनी शीलवती है!" इसके बाद अपनी कन्या का मृतकृत्य करके उसने उसकी हड्डियों को नदी में विसर्जित कर दिया।

उधर कुछ दिनो बाद राजपुत्र का धन समाप्त हो गया। राजपुत्र ने सुंदरी से कहा—"चलो प्रिये ! अब कहीं अन्यत्र जाकर रहेंगे।" सुंदरी ने उत्तर दिया—"कहीं जाने की जरूरत नहीं, यहीं पर हमारे सब मनोरथ पूरे हो जायँगे।"

एक दिन राजपुत्र मनोरथ सेठ की दूकान पर गया और उससे रेशमी साड़ियाँ माँगीं। उन साड़ियों को अपनी स्त्री को दिखाने के लिये उसने घर भेजवा दिया। स्त्री को साड़ियाँ पसंद नहीं आईं, उसने उन्हें लौटा दिया। इस तरह दो-तीन बार साड़ियाँ मँगवाईं और लौटाई गईं।

सेठ ने कहा—"इस तरह जूते घिसने से क्या फायदा ? अपनी स्त्री को यहीं बुला लो, वह स्वयं पसद कर लेगी।"

सुंदरी मनोरथ सेठ की दूकान पर आई। उसे देखकर सेठ को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा—"यह तो मेरी बेटी सुन्दरी है।"

राजपुत्र ने उत्तर दिया—"सेठ जी ! क्या आप भूल गये, वह तो आग में जलकर मर गई थी स्नेह के वश होकर तो आप कहीं ऐसी बाते नहीं कह रहे हैं ?"

सेठ—हो सकता है कि दोनो में समानता के कारण मुझे भ्रम हो गया हो।

राजपुत्र—सेठ जी ! इसमें आपका क्या दोष ? एक जैसी वस्तुओ को देखकर भ्रम हो जाना स्वाभाविक है। समानता के कारण ही सूर्य-भवन में आपकी कन्या को देखकर मैं उसे पत्नी समझ बैठा और मैंने

स्पर्श किया। और अब आप भ्रम के वश मेरी पत्नी को अपनी कन्या बता रहे हैं?

सेठ—खैर, कोई बात नहीं, तुम्हारी पत्नी बिल्कुल मेरी लड़की जैसी दिखाई देती है, इसलिये मैं इसे अपनी ही मानता हूँ। इसे जो चाहिये मुझसे ले ले।

× × ×

कहानी सुनकर नागकुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ।

मदनलता ने कहा—"नाथ! स्त्रियों का चरित बड़ा गहन होता है, आप नहीं जानते।"

नागकुमार ने उत्तर दिया—"तुम चिन्ता न करो, मैं इसका पता लगाऊँगा।"

एक दिन नागकुमार ने अपनी स्त्री से कहा कि वह परदेश जा रहा है। लेकिन कुछ दूर जाकर वह लौट आया और मदनलता के घर रहने लगा।

एक दिन कपट-वेष बनाकर उसने अपने घर में प्रवेश किया।

नागिनी ने पूछा—"क्या तुम कोई परदेशी हो?"

"हाँ।"

"यदि तुम मेरा एक काम करो तो तुम्हे एक रुपया मिलेगा।"

"करूँगा"

"देखो, इस पोटली को उठाकर मेरे साथ आओ।"

पोटली उठाकर नागकुमार उसके साथ चला। बाहर आकर देखा तो नागिनी का कोई प्रेमी शूली पर चढ़ा हुआ दिखाई दिया। कुंकुम, पुष्प आदि से नागिनी उसकी पूजा करने लगी।

फिर घर लौटकर नागिनी ने कपटवेषी नागकुमार को घर के दरवाजे पर सोने के लिये कहा, और इसके बदले उसे एक रुपया देने का वादा किया।

नागकुमार दरवाजे पर सो गया। इस समय नागिनी का कोई दूसरा प्रेमी आया। उसे नागिनी के पहले प्रेमी का पता लगा तो वह कहने लगा—"अरी दुष्टे! तेरा पहला प्रेमी तो चोर निकला और तू मुझसे भी प्रेम करती है? जा, तेरा-मेरा कोई सम्बन्ध नहीं।" यह कहकर वह उसकी सेज पर दूसरी ओर को मुँह करके लेट गया।

नागिनी ने सोचा—"कहीं यह मेरी पोल न खोल दे।" नागिनी ने उसके सिर में छुरी भोंक दी।

नागिनी ने नागकुमार से एक गड्ढा खोदने को कहा और उसके बदले एक रुपया देने का वादा किया। नागकुमार ने गड्ढा खोद दिया। नागिनी ने अपने प्रेमी की लाश के टुकड़े कर उसमें दबा दिये।

यह तिरियाचरित देखकर नागकुमार मदनलता के पास लौटा और उससे सब हाल सुनाया।

कुछ समय बाद घोषणा कर दी गई कि नागकुमार प्रवास से लौटकर आ गया है। वह नागिनी के घर रहने लगा।

एक दिन पति-पत्नी दोनों जूआ खेल रहे थे। जुए मे नागकुमार एक रुपया जीत गया। नागिनी के बार-बार माँगने पर भी उसने रुपया नहीं लौटाया। नागकुमार ने कहा—"देखो, तुम पर मेरे दो रुपये चाहिये, एक पोटली उठाकर ले जाने का और दूसरा गड्ढा खोदने का। इनमें से एक रुपया गल गया है और दूसरा मुझे मिल गया है।"

२३ : त्रियाचरित्र

कुसुमपुर नगर में धनवाह नाम का एक सार्थवाह का पुत्र रहता था। बंधुमती उसकी भार्या थी।

एक बार की बात है, धनोपार्जन के लिये धनवाह ने देशातर जाने का विचार किया। उसके भाई-बन्धुओं ने उसे रोकना चाहा लेकिन वह न माना। बंधुमती की भी उसने एक न सुनी। आखिर जब वह प्रस्थान करने लगा तो बंधुमती ने नीचे लिखे शब्द कहे।

"हे प्रियतम! तुम्हारे चले जाने पर मेरा सारा सुख नष्ट हो जायगा। आखिर जो अपने सिर को जलाने की इच्छा करता है उसे कौन रोक सकता है?"

लेकिन धनवाह बंधुमती की इस वक्र उक्ति का अर्थ नहीं समझ सका और वह विदेश-यात्रा के लिये चल पड़ा।

एक बार की बात है, सूर्यास्त हो जाने पर जब कमल मुकुलित हो गये, दूतियाँ अपने कार्य में प्रवृत्त हो गईं, स्त्रियों का मन आनन्दित होने

लगा और कुलटायें हर्ष से प्रफुल्लित हो उठीं तो बंधुमती अपने घर के उद्यान में पहुँची और वहाँ की रमणीयता का अनुभव कर उसका हृदय चंचल हो उठा।

इस समय वहाँ से एक नौजवान पथिक जा रहा था। बंधुमती ने उसे अनुरागपूर्ण नेत्रों से देखा। फिर चन्द्र को उद्देश्य करके उसने निम्न-लिखित वाक्य कहे—

"हे कृश शरीरवाले! तेरा दर्शन स्थिर नहीं है। तू नेत्रों को आह्लाद उत्पन्न करता है। तू बड़ी मुश्किल से दिखाई पड़ा है। हे पथिक! मै एक गृहिणी हूँ। प्रार्थना करने पर भी तू यहाँ वास नहीं करता। मै तुझे प्रणाम करती हूँ।"

पथिक ने उत्तर दिया—

"हे सुन्दरि! नेत्रो को आनन्द प्रदान करनेवाले चन्द्रमा को जो तूने प्रणाम किया है, वह स्थायी रूप से निवास करनेवाला तेरा वर होगा। इसमें कौन आश्चर्य है?"

बंधुमती पथिक को अपने घर लिवा ले गई और दोनों आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एक दिन की बात है, बंधुमती ने नृत्य करते हुए किसी युवक को देखा और वह उसकी ओर आकृष्ट हो गई। बंधुमती के मन का भाव जानकर नृत्य समाप्त होने पर वह युवक उसके पीछे-पीछे चला।

घर पहुँचकर बंधुमती ने बैठने के लिये उसे आसन दिया और उसके पाँव धोये। पाँव धोते समय युवक ने उसका हाथ पकड़ लिया। इस बीच मे बंधुमती का पहला प्रेमी आ गया। उसने कहा—"यह क्या?" बंधुमती ने फौरन जवाब दिया—"तुम जानते हो, धनवाह आनेवाला है, उसका स्वागत करने के लिये मै अपने हाथ का कड़ा निकाल रही हूँ।"

दूसरे दिन बंधुमती को उसके साथ अठखेलियाँ करते देख गुस्से में वह कहने लगा—"अरी दुष्टे ! यह क्या कर रही है ?"

बंधुमती की सखी ने उत्तर दिया—

"मेरे देखते ही देखते सुगन्ध के लोभी भ्रमर ने कमल को डस लिया है। हे मूर्ख ! उसका अधर देखकर तू गुस्सा मत हो।"

यह देखकर उसका पहला प्रेमी अपने घर लौट गया।

बंधुमती भी उसके पीछे-पीछे चली। रास्ते में उसे एक छोटी-सी गली में से आता हुआ उसका पति दिखाई पड़ गया। उसे देखकर रोते-रोते उसने अपने प्रेमी से कहा—"जा, तू अब लौट जा।"

वह चला गया। पति ने उसे रोती देखकर पूछा—"क्या बात है ?"

बंधुमती ने उत्तर दिया—"तुम्हारा स्वागत करने के लिए मै आई थी। अब तुम्हारे दर्शन पाकर आनन्द के अश्रु छलक पड़े है।"

इस प्रकार बंधुमती ने अपने चरित के द्वारा अपने आँसुओं से दो पुरुषों को प्रसन्न किया।

●

२४ : रानी रत्नदेवी

जलौदा नगरी में क्षेमराज नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम रत्नदेवी था।

क्षेमराज रत्नवती को बहुत प्यार करता था, फिर भी वह उससे सन्तुष्ट नहीं थी। कहा भी है—

"जैसे अग्नि लकड़ियों से और समुद्र नदियों से तृप्त नहीं होता, वैसे ही स्त्रियाँ भी पुरुषों से तृप्त नहीं होतीं। उनका कुछ स्वभाव ही ऐसा है कि वे गुणी, पराक्रमी, युवा और रति में कुशल अपने पति को छोड़कर शील और गुण से विहीन पुरुषों के पास चली जाती हैं।"

अपने पति से रंजित न होने पर रत्नदेवी ने नगर के दंडनायक देवराज, उसके पुत्र धवलाक्ष और अपने नौकर पर नजर डाली।

एक दिन की बात है, क्षेमराज शिकार खेलने गया हुआ था। देवराज और धवलाक्ष भी शहर में नहीं थे। उद्यानों और बाग-बगीचों में वसन्त छाया हुआ था। फूलों की सुगन्ध और भीनी-भीनी हवा मन में

मस्ती पैदा कर रही थी। रत्नदेवी ने अपने नौकर को बुलाया और उसके साथ अठखेलियाँ करने लगी।

संयोग की बात, इस समय धवलाक्ष ने शयनकक्ष का दरवाजा खट-खटाया। रत्नदेवी ने नौकर को झट से एक तरफ कर दिया और धवलाक्ष का स्वागत कर उसे अन्दर लिवा ले गई।

धवलाक्ष के साथ वह क्रीड़ा करने लगी। कुछ ही समय बीता था कि खिड़की में से देवराज आता हुआ दिखाई दिया।

रानी ने झट से धवलाक्ष को अनाज के कोठार में छिपा दिया और देवराज को अन्दर ले गई।

देवराज जाने की तैयारी में था कि इतने में उसका पति आ पहुँचा।

उसे देखते ही रानी जोर से चिल्लाकर देवराज को लक्ष्य करके कहने लगी—"मैंने कितनी बार कहा है कि वह यहाँ नहीं है, फिर भी तुम नहीं सुनते? तुम जानते हो मेरे पति को छोड़कर और कोई मेरे शयन-कक्ष में प्रवेश नहीं कर सकता? फिर तुमने यहाँ आने की हिम्मत कैसे की? भले ही तुम नगर के दंडनायक हो लेकिन मेरे शयनकक्ष में प्रवेश करने का तुम्हे कोई अधिकार नहीं। अच्छा हुआ जो तुम्हारे यहाँ प्रवेश करते ही मेरे पतिदेव आ गये, नहीं तो न जाने क्या होता?"

रत्नदेवी ने अपने पति का अत्यन्त प्रेमपूर्वक आलिंगन किया। फिर देवराज को लक्ष्य करके कहा—"तुम यहाँ से शीघ्र ही निकल जाओ तथा और कहीं जाकर उसकी तलाश करो।"

पहले देवराज इन सब बातों को सुनकर हैरान रह गया। लेकिन शीघ्र ही मतलब समझने में उसे देर न लगी। रानी से क्षमा माँगता हुआ वह वहाँ से चला गया।

रानी राजा क्षेमराज के सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। फिर पैर पकड़कर कहने लगी—"प्राणप्रिय! आज मेरे हाथ से एक शुभ कार्य हुआ है। मैंने एक निरपराधी की रक्षा की है।"

"किसकी रक्षा ?" क्षेमराज ने आश्चर्य से पूछा।

रत्नदेवी उसे उस घर मे ले गई जहाँ धवलाक्ष डर के मारे भिल्ली बना हुआ छिपा था। धवलाक्ष की ओर देखकर उसने कहा—"देखिये, नाथ! देवराज इस पर बहुत गुस्सा था। मै न होती तो देवराज इसे जरूर मार डालता। इसे ढूँढ़ता हुआ वह यहाँ आया था। इस बेचारे ने भागकर राजमहल में शरण ली तो मैंने इसे कोठार में छिपा दिया।"

क्षेमराज ने देखा कि धवलाक्ष डर के मारे काँप रहा था। धवलाक्ष को डर था कि कहीं रानी के साथ उसके सम्बन्ध का राजा को पता तो नहीं लग गया। राजा ने रानी की पीठ थपाथपा कर उसे शाबाशी देते कहा—"प्रिये! तुमने इस निर्दोष की रक्षा कर सचमुच बड़ा काम किया है, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ।"

रानी ने उत्तर दिया—"प्राणनाथ! यह आपका मुझ पर अतिशय प्रेम है जो आपने मेरे कार्य को सराहा है। लेकिन आप शायद न जानते हो कि यदि मै इसे आज रात को ही इसके घर भेज दूँगी तो इसका दुष्ट पिता इसे जिन्दा न छोड़ेगा। इसलिये यदि आपकी आज्ञा हो तो आज रात को यह यहीं रह जाय। कल इसके पिता का क्रोध शान्त हो जाने पर इसे भेज दूँगी।"

क्षेमराज ने कहा—"प्रिये! तुमने बहुत ठीक सोचा। इसका अभी घर जाना ठीक नहीं।"

यह कहकर क्षेमराज ने अपनी रानी का गाढ़ आलिंगन किया और धवलाक्ष को उसके पास छोड़ दूसरे शयन-कक्ष में सोने चला गया।

किसी ने ठीक ही कहा है—

"स्त्री का भोजन दुगुना, बुद्धि चौगुनी, व्यवसाय छहगुना और उसकी प्रणयाकांक्षा अठगुनी होती है!"

●

२५ : युवतिचरित की शिक्षा

लाट देश में भडौंच नाम का एक नगर था। वहाँ जलनप्रभ नाम का एक विद्वान् ब्राह्मण रहता था। उसके सोमप्रभ नाम का पुत्र था।

सोमप्रभ ने अपने पिता से वेद, वेदांग आदि शास्त्रों का अध्ययन किया था। लेकिन विद्याध्ययन से कभी सन्तोष नहीं होता, इसलिये सोमप्रभ ने पाटलिपुत्र जाने का विचार किया और वहाँ जाकर वह चौदह विद्याओं में पारगत हो गया।

सोमप्रभ पाटलिपुत्र में ही रहने लगा। एक दिन उसके मन में विचार आया कि अगाध ज्ञान होने पर भी उससे क्या लाभ यदि वह अपने देशवासियों के काम न आ सके।

यह सोचकर सोमप्रभ भडौंच लौट आया। नगरवासियों ने उसका धूमधाम से स्वागत किया।

जगह-जगह सोमप्रभ के व्याख्यान और उपदेशों की धूम मच गई। सब लोग उसके पांडित्य पर लट्टू थे। एक उसकी स्त्री ही ऐसी थी जो प्रसन्न नहीं थी।

वह जानती थी कि उसका पति बहुत ज्यादा पढ़-लिखकर संसार के विषय-भोगो की ओर से उदासीन हो गया है जिससे वह उसके साथ यथेच्छ भोगो का सेवन नहीं कर सकती। उसने सोचा—"क्यों न इसे फिर से कहीं भेजकर स्वच्छन्द जीवन बिताऊँ?"

एक दिन उसकी स्त्री ने कहा—"प्राणनाथ! आज तो आप युवति-चरित का बखान करें।" सोमप्रभ ने उत्तर दिया—"मैने तो इस शास्त्र का नाम भी नहीं सुना।"

"आप नहीं जानते कि इसके बिना तो अन्य सब शास्त्र निरर्थक हैं।"

"प्रिये! यदि ऐसी बात है तो मैं इस शास्त्र का अध्ययन कर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा।"

यह कहकर सोमप्रभ युवतिचरित की शिक्षा पाने के लिये फिर से पाटलिपुत्र के लिये रवाना हो गया।

रास्ते में मथुरा पड़ा। वह नगर के किसी उद्यान में ठहर गया। वहाँ विजया नाम की कोई ब्राह्मण कन्या रहती थी। उसने सोमप्रभ को यह कहते हुए सुन लिया कि वह युवतिचरित की शिक्षा पाने के लिये पाटलिपुत्र जा रहा है।

विजया ने सोचा—"मै ही इसे युवतिचरित की शिक्षा क्यों न दे दूँ।" उसने अपनी दासी को सोमप्रभ के पास भेजकर उसके कुल और माता-पिता आदि की जानकारी प्राप्त कर ली।

एक दिन सोमप्रभ भिक्षा माँगता हुआ विजया के घर पहुँचा। सोमप्रभ को देखते ही विजया उससे गले मिलकर उसके देश, नगर, माता-पिता, भाई-बहन और सम्बन्धियो का नाम ले लेकर रोने लगी। जब उसका रोना-धोना बन्द हो गया तो उसके सगे-सम्बन्धियों ने उस युवक के बारे में पूछा।

विजया ने कहा—"यह मेरे चाचा का लड़का है, बहुत दिनों के बाद मिला है।" फिर उसने उसे सुगंधित तेल की मालिश की, सुवासित जल से स्नान कराया, कीमती सुन्दर वस्त्र पहनाये, षट्रस व्यंजन युक्त भोजन कराया, चन्दन का लेप किया और ताम्बूल दिया।

उसके बाद रात्रि के पहले प्रहर में उसने अपने पति से कहा—"नाथ! बहुत दिनों बाद मेरा भाई आया है, आज रात को मैं उससे बातें करना चाहती हूँ, इसलिये आज आप अकेले ही सोयें।"

वह अपने पति को सुलाकर सोमप्रभ को लेकर दूसरे कमरे में चली गई।

उसने दो बिस्तरे बिछाये। वह पूर्वकाल के ऋषि-मुनियों की कहानी कहने लगी। कहानी सुनते-सुनते सोमप्रभ ऊँघने लगा। विजया ने पूछा—"बड़े निश्चिन्त होकर ऊँघ रहे हो! मेरी वेदना भी समझते हो या नहीं?"

"तुम्हारी क्या वेदना है?"

"काम की वेदना।"

सोमप्रभ ने सोचा कि यह नींद में कह रही है। उसने फिर से पूछा। विजया ने फिर से वही कहा।

"बहन! ऐसी बातें करना तुम्हे शोभा नहीं देता।"

"तुमसे ही तो कह रही हूँ, नहीं तो इसे और कौन शान्त करेगा?"

"अरे! तुम्हे परलोक का भी कुछ डर है या नहीं जो इस तरह की बात करती हो?"

"इसमें डर की क्या बात है?" तुम नहीं जानते कि हरि, हर, ब्रह्मा और इन्द्र आदि महा ऋषियों ने यह मार्ग दिखाया है?"

"ऐसी बात मुँह से निकालना तुम्हे शोभा नहीं देता। अपनी बहन की कामना तो इन्होंने नहीं की?"

"जानते हो, मैं तुम्हारी बहन नहीं हूँ।"

"अभी-अभी तो तुमने अपने आप को मेरी बहन बताया था। याद रक्खो, यह अच्छी बात नहीं है, अपना परलोक मत बिगाड़ो।"

"यदि तू सचमुच परलोक से डरता है तो मेरी इच्छा पूर्ण कर मुझे जीवनदान कर दे।"

"ज्यादा बात मत करो। मुझसे यह अकार्य नहीं हो सकता।"

"यदि तुम जीते हुए यह न करोगे तो मरकर भी पार नहीं उतर सकते। और इसे तुम अकार्य कैसे कहते हो? देखो, लाट देश में मामा की लड़की से, उदीच्यों में सौत से, कहीं भाभी और कहीं बहन से विवाह करने मे भी दोष नहीं माना गया। और मैं तो तुम्हारे चाचा की लड़की हूँ, अतएव इस कार्य मे तुम विघ्न पैदा न करो।"

"तुम कह चुकी हो कि तुम मेरी बहन हो, फिर बार-बार क्या कहती हो?"

"यदि तुम तैयार नहीं होते तो मैं अभी हल्ला मचाती हूँ।"

यह कहकर विजया जोर से चिल्लायी और शोर सुनकर घर के लोग इकट्ठे हो गये।

दुपहर में भोजन करके उसके खाट के नीचे जूठे बर्तन रख दिये गये थे। उन बर्तनो को दिखाकर उसने कहा—"देखिये, इसे हैजा हो गया है। अभी इसने उल्टी की है, मैंने थोड़ा गर्म पानी पिला दिया है, सेक भी कर दिया है, थोड़ी देर में यह बिल्कुल ठीक हो जायगा, आप लोग चिन्ता न करे।"

लोगो के चले जाने पर उसने कमरे के किवाड़ बन्द करके फिर सोमप्रभ से कहा—"देखो, यदि तुम जीना चाहो तो तुम मेरी इच्छा पूरी कर मुझे जीवन दान दो।"

"देखो, मैं कह चुका हूँ। अब मेरा जीवन तुम्हारे ही आधीन है। मेरी इच्छा बिल्कुल ही नहीं है, फिर भी जो तुम कहो मैं करने को तैयार हूँ।"

विजया ने कहा—"देखो सोमप्रभ ! तुम युवतिचरित सीखने के लिये पाटलिपुत्र जा रहे थे। इसकी शिक्षा मैंने तुम्हे यहीं दे दी है। जाओ, अब अपने घर लौट जाओ।"

•

२६ : सुकुमालिका का पतिव्रत

वसंतपुर नगर में जितशत्रु राजा रहता था। उसकी पटरानी का नाम सुकुमालिका था। राजा उसके रूप-लावण्य से इतना मोहित था कि वह अन्तःपुर की दूसरी रानियो की परवा नहीं करता था। इतना ही नहीं, अपने राजकाज की भी देखभाल करना उसने छोड़ दिया था।

आसपास के राजाओ को जितशत्रु के इस व्यसन का पता लगा तो मौका देखकर उन्होंने उस पर चढ़ाई कर दी।

शत्रु को नगरी मे आया देख मंत्रियो ने राजा से तैयारी करने को कहा। लेकिन बार-बार कहने पर भी राजा ने कोई ध्यान नहीं दिया तो एक दिन जब वह मदिरा पान कर रानी के साथ सो रहा था, उसे

पास के एक जंगल में छुड़वा दिया गया। जितशत्रु के स्थान पर उसके पुत्र को गद्दी पर बैठा दिया गया।

राजा को होश आया तो वह सोचने लगा—"चतुर लोग दुख पड़ने पर निराश नहीं होते, संपत्ति मिलने पर गर्व नहीं करते, भय आने पर धीरज नहीं खोते तथा सम और विषम परिस्थितियों को सहन करने में समर्थ होते हैं।"

राजा अपनी रानी के साथ बस्ती की ओर चला। थोड़ी देर बाद सुकुमालिका को प्यास लगी और थकावट के मारे वह आगे न चल सकी तो राजा उसे वृक्ष की छाया मे बैठाकर पानी लेने गया। आसपास मे कहीं पानी न मिलने पर उसने अपनी बॉह काटकर उसमें से खून निकाला और उसने एक दवा घोल रानी की ऑख बन्द कर उसे पिला दिया।

थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर रानी को भूख लगी। राजा ने अपनी जाँघ में से थोड़ा सा मांस काट उसे आग मे पकाकर उसे खिला दिया।

चलते-चलते दोनो एक नगर मे पहुँचे। यहॉ रानी के गहने बेचकर राजा ने आजीविका का प्रबंध किया।

एक बार की बात है, रानी ने कहा—"अकेले में मेरा जी नहीं लगता। मुझे कोई साथी चाहिये।"

राजा ने एक लॅगडे को बाजार मे बैठे देखा। उसने सोचा यह ठीक रहेगा, और उसे वह रानी के पास ले आया।

लॅगड़ा हॅसी, मजाक और गीत आदि से रानी का मन बहलाने लगा। धीरे-धीरे दोनों में प्रेम हो गया।

रानी ने राजा के दोषों का अन्वेषण करना आरम्भ कर दिया। एक बार वसंतोत्सव बड़ी धूम से मनाया जा रहा था। राजा शराब के नशे में चूर पड़ा था। मौका पाकर रानी ने उसे गंगा में बहा दिया।

बहते-बहते राजा किसी नगर में गंगा-तट पर जा लगा। उसे यह सब कुछ स्वप्न के समान जान-पड़ा। गंगा में से निकलकर वह अशोक वृक्ष की छाया में सो गया।

संयोग की बात, नरेन्द्रपुर का राजा पुत्र के अभाव मे मर गया था। ऐसी हालत मे राजा का चुनाव करने के लिये पाँच दिव्य पदार्थ नगर में घुमाये गये जो राजा के सामने आकर ठहर गये। जितशत्रु का अभिषेक हुआ और वह फिर से राजा बन गया।

उधर सुकुमालिका उस लँगड़े के साथ घर-घर गाती हुई फिरने लगी। पूछने-पर लोगों से कहती—"मेरा यह स्वामी मेरे गुरुजनो ने मुझे दिया है।"

एक बार की बात है, घूमती-फिरती वह नरेन्द्रपुर नगर में पहुँची। वहाँ परदे के पीछे बैठकर उसने गाना शुरू किया। राजा ने पूछा—"यह लँगड़ा कौन है?" रानी ने जवाब दिया—"इसे मेरे गुरुजनों ने मुझे दिया है। पतिव्रता होने के कारण मुझे इसकी देखभाल करनी पड़ती है।

राजा ने कहा—

"हे पतिव्रते! तू ने बाँहों का रक्तपान किया, जाँघ का मांस भक्षण किया और अपने पति को गंगा में बहा दिया, तुझे धन्य है!"

●